

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय आठवा

अर्जुन उवाच : किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।

आर्धिभूतंच किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥

मग अर्जुनें म्हणितलें। हां हो जी अवधारिलें। जें म्यां पुसिलें। तें निरूपिजो ॥१॥ सांगा कवण तें ब्रह्म। कायसया नाम कर्म। अथवा अध्यात्म। काय म्हणिपे ॥२॥ आर्धिभूत तें कैसें। एथ आर्धिदैव तें कण असे। हें उघड मी परियेसें। तैसें बोला ॥३॥

आर्धियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन् मधुसूदन। प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

देवा आर्धियज्ञ तो काई। कवण पां इये देहीं। हें अनुमानासि कांहीं। दिठी न भरे ॥४॥ आणि

नियता अंतःकरणीं। तूं जाणिजसी देहप्रयाणीं। तें कैसेनि हें शाड्गपाणी। परिसवा मातें ॥५॥ देखा धवळारीं चिंतामणीचां। जरी पहुडला होय दैवाचा। तरी वोसणतांही बोलु तयाचा। परी सोपु न वचे ॥६॥ तैसें अर्जुनाचिया बोलासवें। आलें तेंचि म्हणितलें देवें। परियेसें गा बरवें। जें पुसिलें तुवां ॥७॥ किरीटी कामधेनूचा पाडा। वरी कल्पतरूचा आहे मांदोडा। म्हणोनि मनोरथसिद्धीचिया चाडा। तो नवल नोहे ॥८॥ कृष्ण कोपोनि ज्यासी मारी। तो पावे ब्रह्मसाक्षात्कारीं। मा कृपेनें उपदेशु करी। तो कैशापरी न पवेल ॥९॥ जें कृष्णाचेया होईजे आपण। कृष्ण होय आपुलें अंतःकरण। तें संकल्पाचें आंगण। वोळगती सिद्धी ॥१०॥ परि ऐसें जें प्रेमा तें अर्जुनींचि आथि निस्सीमा म्हणऊनि तयाचे काम। सदाफल ॥११॥ या कारणें अनंतें। तें मनोगत तयाचें पुसतें। होईल जाणूनि आइतें। वोगरुनि ठेविलें ॥१२॥ जें अपत्य थानींहूनि निगे। तयाची भूक ते मायेसीचि लागे। एन्हवीं तें शब्दें काय सांगे। मग स्तन्य दे येरी ॥१३॥ म्हणोनि कृपाळुवा गुरुचिया ठायीं। हें नवल नोहे कांहीं। परि तें असो आइका काई। जें देवो बोलता झाला ॥१४॥

श्रीभगवानुवाचःअक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते। भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥

मग म्हणितलें सर्वेश्वरें। जें आकारीं इये खोंकरे। कोंदलें असत न खिरे। कवणे काळीं ॥१५॥ एन्हवीं सपूरपण तयाचें पहावें। तरि शून्यचि नव्हे स्वभावं। वरि गगनाचेनि पालवें। गाळूनि घेतलें ॥१६॥ होंचि लागती ॥२१॥ पें निर्विकल्पाचिये बरडी। कीं आदिसंकल्पाची फुटे विरुढी। आणि ते

सवेचि मोडोनि ये ढोंडी। ब्रह्मगोळकांची ॥२२॥ तया एकैकाचे भीतरीं पाहिजे। तंव बीजाचाचि
 भरिला देखिजे। माजीं होतियां जातियां नेणिजे। लेख जीवां ॥२३॥ मग तया गोळकांचे अंशांश।
 प्रसवती आदिसंकल्प असमसहासा। हें असो ऐसी बहुवसा। सृष्टि वाढे ॥२४॥ परि दुजेनविण एकला।
 परब्रह्मचि संचला। अनेकत्वाचा आला। पूर जैसा ॥२५॥ तैसें समविषमत्व नेणों कैचें। वांयांचि
 चराचर रचे। पाहातां प्रसवतिया योनींचे। लक्ष दिसती ॥२६॥ येरी जीवभावाचिये पालविये। कांहीं
 मर्यादाच करुं नये। पाहिजे कवण हें आघवें विये। तंव मूळ तें शून्य ॥२७॥ म्हणूनि कर्ता मुदल न
 दिसे। आणि शेखीं कारणही कांहीं नसे। माजीं कार्यचि आपैसें। वाढों लागे ॥२८॥ ऐसा करितेनवीण
 गोचरु। अव्यक्तीं हा आकारु। निपजे जो व्यापारु। तया नाम कर्म ॥२९॥

आर्धिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्। आर्धियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभूतां वर ॥४॥

आतां आर्धिभूत जें म्हणिजे। तेंहि सांगों संक्षेपें। तरी होय आणि हारपे। अभ्र जैसें ॥३०॥ तैसें
 असतेपण आहाचा। नाहीं होइजे हें साच। जयातें रूपा आणिती पांचपांच। मिळोनियां ॥३१॥ भूतांतें
 आर्धिकरुनि असे। आणि भूतसंयोगे तरि दिसे। जें वियोगवेळे भ्रंशे। नामरूपादिक ॥३२॥ तयातें
 आर्धिभूत म्हणिजे। मग आर्धिदैव पुरुष जाणिजे। जेणें प्रकृतीचें भोगिजे। उपार्जिलें ॥३३॥ जो

चेतनेचा चक्षु। जो इंद्रियदेशींचा अध्यक्षु। जो देहास्तमांनीं वृक्षु। संकल्पविहंगाचा ॥३४॥ जो
 परमात्माचि परि दुसरा। जे अहंकारनिद्रा निदसुरा। म्हणोनि स्वप्नीचिया वोरबारा। संतोषे शिणे
 ॥३५॥ जीव येणें नांवें। जयातें आळविजे स्वभावे। तें आर्धिदैव जाणावें। पंचायतनींचें ॥३६॥ आतां
 इयेचि शरीरग्रामीं। जो शरीरभावातें उपशमी। तो आर्धियज्ञु एथ गा मी। पंडुकुमरा ॥३७॥ येर
 आर्धिदैवाधिभूत। तेहि मीचि कीर समस्त। परि पंधरें किडाळा मिळता। काय सांकें नोहे ॥३८॥ तरि
 तें पंधरेपण न मैळे। आणि किडाचियाही अंशा न मिळे। परि जंव असे तयाचेनि मेळें। तंव सांकेंचि
 म्हणिजे ॥३९॥ तैसें आर्धिभूतादि आघवें। हें आर्विद्येचेनि पालवें। झांकलें तंव मानावें। वेगळें ऐसें
 ॥४०॥ तेचि आर्विद्येची जवनिक फिटे। आणि भेदभावांची अवधि तुटे। मग म्हणों एक होऊनि जरी
 आटे। तरी काय दोनी होती ॥४१॥ पै केशांचा गुंडाळा। ठेविली स्फटिकशिळा। ते वरी पाहिली
 डोळां। तंव भेदली गमली ॥४२॥ पाठीं केश परौते नेले। आणि भेदलेपण काय नेणों जाहालें। तरि
 डांक देऊनि सांदिलें। शिळेतें काई ॥४३॥ ना ते अखंडचि आयती। परि संगें भिन्न गमली होती। ते
 सारीलिया मागौती। जैसी का तैसी ॥४४॥ तेवीं अहंभावो जाये। तरी ऐक्य तें आर्धीचि आहे। हेंचि
 साचें जेथ होये। तो आर्धियज्ञु मी ॥४५॥ पै गा आम्हीं तुज। सकळ यज्ञ कर्मज। सांगितलें कां जें
 ाज। मनीं धरुनि ॥४६॥ तो हा सकळ जीवांचा विसांवा। नैष्कर्म्यसुखाचा ठेवा। परि उघड करुनि
 पांडवा। दाविजत असे ॥४७॥ पहिलें वैराग्यइंधन परिपूर्तीं। इंद्रियानळीं प्रदीप्तीं। विषयद्रव्याचिया

* आहुती। देऊनियां ॥४८॥ मग वज्रासन तेचि उर्वी। शोधूनि आधारमुद्रा बरवी। वेदिका रचे मांडवी। *
 * शरीराचां ॥४९॥ तेथ संयमाग्नीचीं कुंडें। इंद्रियद्रव्याचेनि पवाडें। पुजिती उदंडें। युक्तिघोषें ॥५०॥ *
 * मग मनप्राण आणि संयमु। हाचि हवनसंपदेचा संभ्रमु। येणें संतोषविजे निर्धूमु। ज्ञानानळु ॥५१॥ *
 * ऐसेनि हें सकळ ज्ञानीं समपें। मग ज्ञान तें ज्ञेयीं हारपे। पाठीं ज्ञेयचि स्वरूपें। निखिल उरे ॥५२॥ तया *
 * नांव गा आर्धियज्ञु। ऐसें बोलला जंव सर्वज्ञु। तंव अर्जुन आर्तिप्राज्ञु। तया पातलें तें ॥५३॥ हें *
 * जाणोनि म्हणितलें देवें। पार्था परिसतु आहासि बरवें। या कृष्णाचिया संतोषासवें। येरु सुखाचा *
 * जाहला ॥५४॥ देखा बालकाचिया धणी धाडजे। कां शिष्याचेनि जाहलेपणें होईजे। हें सद्गुरुचि *
 * एकलेनि जाणिजे। कां प्रसवतिया ॥५५॥ म्हणोनि सात्त्विक भावांची मांदी। कृष्णाआंगीं अर्जुनाआधीं। *
 * न समातसे परी बुद्धी। सांवरुनि देवें॥५६॥ मग पिकलिया सुखाचा परिमळु। कां निवालिया अमृताचा *
 * कल्लोळु। तैसा कोंवळा आणि सरळु। बोलु बोलिला ॥५७॥ म्हणे परिसणेयांच्या राया। आइकें बापा *
 * धनंजया। ऐसी जळों सरलिया माया। तेथ जाळितें तेंही जळे ॥५८॥ जें आतांचि सांगितलें होतें। *
 * अगा आर्धियज्ञ म्हणितला जयातें। जे आदींचि तया मातें। जाणोनि अंतीं ॥५९॥ ते देह झोळ ऐसें *
 * मानुनी। ठेले आपणपें आपणचि होउनी। जैसा मठ गगना भरुनी। गगनींचि असे ॥६०॥ ये प्रतीतीचिया *
 * माजघरीं। तयां निश्चयाची वोवरी। आली म्हणोनि बाहेरी। नव्हेचि से ॥६१॥ ऐसें सबाह्य ऐक्य *

* संचलें। मीचि होऊनि असतां रचिलें। बाहेरी भूतांचीं पांचही खवलें। नेणतांचि पडिलीं ॥६२॥ उभयां *
 * उभेपण नाहीं जयाचें। मा पडिलिया गहन कवण तयाचें। म्हणोनि प्रतीतिचिये पोटींचें। पाणी न हाले *
 * ॥६३॥ ते ऐक्याची आहे वोतिली। कीं नित्यतेचिया हृदयीं घातली। जैसी समरससमुद्रीं धुतली। *
 * रुळेचिना ॥६४॥ पै अथावीं घट बुडाला। तो आंतबाहेरी उदकें भरला। पाठीं दैवगत्या जरी फुटला। *
 * तरी उदक काय फुटे ॥६५॥ नातरी सपें कवच सांडिलें। कां उबारेन वस्त्र फेडिलें। तरी सांग पां *
 * कांहीं मोडलें। अवेवामार्जी ॥६६॥ तैसा आकारु हा आहाच भ्रंशे। वांचूनि वस्तु ते सांचलीचि असे। *
 * तेचि बुद्धि जालिया विसुकुसे। कैसेनि आतां ॥६७॥ *

* अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्। यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥ *

* म्हणोनि यापरी मातें। अंतकाळीं जाणतसाते। जे मोकलिती देहातें। ते मीचि होती ॥६८॥ *
 * एन्हवीं तरी साधारण। उरीं आदळलिया मरण। जो आठवु धरी अंतःकरण। तेंचि होईजे ॥६९॥ जैसा *
 * कवणु एकु काकुळती। पळतां पवनगती। दुपाउलीं अवचितीं। कुहामार्जी पडिला ॥७०॥ आतां तया *
 * पडणयाआरौतें। पडण चुकवावया परौतें। नाहीं म्हणोनि तेथें। पडावेंचि पडे ॥७१॥ तेविं मृत्यूचेनि *
 * अवसरें एकें। जें येऊनि जीवासमोर ठाके। तें होणें मग न चुके। भलतयापरी ॥७२॥ आणि जागता *
 * जंव आर्सिजे। तंव जेणें ध्यानं भावना भाविजे। डोळां लागतखेवो देखिजे। तेंचि स्वप्नीं ॥७३॥ *

* यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥ *

तेविं जितेनि अवसरें। जें आवडोनि जीवीं उरे। तेंचि मरणाचिये मेरे। फार हों लागे ॥७४॥ आणि
मरणीं जया जें आठवे। तो तेचि गतीतें पावे। म्हणोनि सदां स्मरावें। मातेचि तुवां ॥७५॥

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च। मय्यर्पितमनोबुद्धिर्ममैवैष्यस्यसंशयः ॥७॥

डोळां जें देखावें। कां कानीं हन ऐकावें। मनीं जें भावावें। बोलावें वाचे ॥७६॥ तें आंत बाहेरी
आघवें। मीचि करुनि घालावें। मग सर्वीं काळीं स्वभावं। मीचि आहें ॥७७॥ अगा ऐसया जरी
जाहालिया। मग न मरिजे देह गेलिया। मा संग्रामु केलिया। भय काय तुज ॥७८॥ तूं मन बुद्धि
सांचेंसीं। जरी माझिया स्वरूपीं आर्पिंसी। तरी मातेंचि गा पावसी। हे माझी भाक ॥७९॥ हेच
कायिसया वरी होये। ऐसा जरी संदेहो वर्तत आहे। तरी अभ्यासूनि आदीं पाहें। मग नव्हे तरी कोपें
॥८०॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना। परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थाऽनुचिन्तयन् ॥८॥

येणेंचि अभ्यासेंसीं योगु। चित्तासि करी पां चांगु। अगा उपायबळें पंगु। पहाड ठाकी ॥८१॥ तेविं
सदभ्यासें निरंतर। चित्तासि परमपुरुषाची मोहर। लावीं मग शरीर। असो अथवा जावो ॥८२॥ जें
नानागती पावतें। तें चित्त वरील आत्मयातें। मग कवण आठवी देहातें। गेलें कीं आहे ॥८३॥ पै
सरितेचेनि ओघें। सिंधुजळा मीनलें घोघें। तें काय वर्तत आहे मागें। म्हणोनि पाहों येती ॥८४॥ ना

तें समुद्रचि होऊन ठेलें। तेविं चित्ताचें चैतन्य जाहालें। जेथ यातायात निमालें। घनानंद जें ॥८५॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः। यः। सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥९॥

जयाचें आकारावीण असणें। जया जन्म ना निमणें। जें आघवेंचि आघवेंपणें। देखत असे
॥८६॥ जें गगनाहून जुनें। जें परमाणुहूनि सानें। जयाचेनि सन्निधानें। विश्व चळे ॥८७॥ जें सर्वातें
यया विये। सर्व जेणें जिये। हेतु जया बिहे। आर्चित्य जें ॥८८॥ देखें वोळंबा इंगळु न चरे। तेजीं तिमिर
जेथ न सरे। जें देहाचें आंधारें। चर्मचक्षूसीं ॥८९॥ सुसडा सूर्यकणांच्या राशी। जो नित्य उदो
ज्ञानियांसी। अस्तमानाचें जयासी। आडनांव नाही ॥९०॥

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥९०॥

तया अव्यंगवाणेया ब्रह्मातें। प्रयाणकाले प्राप्ते। जो स्थिरावलेनि चित्तें। जाणोनि स्मरे ॥९१॥
बाहेरी पद्मासन रचुनी। उत्तराभिमुख बैसोनि। जीवीं सुख सूनि। कर्मयोगाचें ॥९२॥ आंतु मीनलेनि
मनोधर्में। स्वरूपप्राप्तीचेनि प्रेमें। आपेंआप संभ्रमें। मिळावया ॥९३॥ आकळलेनि योगें। मध्यमामध्यमार्गे।
आग्निस्थानौनि निगे। ब्रह्मरंध्रा ॥९४॥ तेथ अचेत चित्ताचा सांगातु। आहाचवाणा दिसे मांडतु। तेथ
प्राणु गगनाआंतु। संचरे कां ॥९५॥ परी मनाचेनि स्थैर्यें धरिला। भक्तीचिया भावना भरला। योगबळें
आवरला। सज्ज होउनि ॥९६॥ तो जडाजडातें विरवितु। भूलतामाजीं रचतु। जैसा घंटानाद लयस्तु।

घंटेसीच होय ॥९७॥ कां झांकलिये घटींचा दिवा। नेणिजे काय जाहला केव्हां। या रीती जो पांडवा।
देह ठेवी ॥९८॥ तो केवळ परब्रह्म। जया परमपुरुष ऐसें नाम। तें माझें निजधाम। होऊनि ठाके
॥९९॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

सकळां जाणणेयां जे लाणी। तिये जाणिवेची जे खाणी। तयां ज्ञानियांचिये आयणी। जयातें
अक्षर म्हणिपे ॥१००॥ चंडवातेंही न मोडे। तें गगनचि कीं फुडें। वांचूनि जरी होईल मेहुडें। तरी
उरेल केंचें ॥११॥ तेविं जाणणेया जें आकळिलें। तें जाणवलेपणेंचि उमाणलें। मग नेणवेचि तयातें
म्हणितलें। अक्षर सहजे ॥१२॥ म्हणोनि वेदविद नरा। म्हणती जयातें अक्षरा। जें प्रकृतीसी परा
परमात्मरूप ॥१३॥ आणि विषयांचे विष उलंडूनि। जे सर्वे द्रियां प्रायश्चित्त देऊनि। आहाति देहाचिया
बैसोनि। झाडातळीं ॥१४॥ ते यापरी विरक्ता। जयाची निरंतर वाट पाहाता। निष्कामासि आर्भिप्रेता।
सर्वदा जें ॥१५॥ जयाचिया आवडी। न गणिती ब्रह्मचर्याचीं सांकडीं। निष्ठुर होऊनि बापुडीं। इंद्रियें
करिती ॥१६॥ ऐसें जें पदा। दुर्लभ आणि अगाध। जयाचिये थडिये चे वेद। चुबुकळिले ठेले ॥१७॥ तें
ते पुरुष होती। जे यापरी लया जाती। तरी पार्था हेचि स्थिती। एक वेळ सांगों ॥१८॥ तेथे अर्जुनें
म्हणितलें स्वामी। हेंचि म्हणावया होतों पां मी। तंव सहजें कृपा केली तुम्हीं। तरी बोलिजो कां जी

॥१९॥ परि बोलावें तें आर्ति सोहोपें। तेथें म्हणितलें त्रिभुवनदीपें। तुज काय नेणों संक्षेपें। सांगेन ऐक
॥११०॥ तरी मना या बाहेरिलीकडे। यावयाची साविया सवें मोडे। हें हृदयाचिया डोहीं बुडे। तैसें
कीजे ॥१११॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च। मूर्ध्न्याध्यायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥

परी हें तरीच घडे। जरी संयमाचीं अखंडें। सर्वद्वारीं कवाडें। कळासती ॥१२॥ तरी सहजें मन
कोंडलें। हृदयींचि असेल उगलें। जैसें करचरणीं मोडलें। परिवरु न संडी ॥१३॥ तैसें चित्त राहिल्या
पांडवा। प्राणांचा प्रणवुचि करावा। मग अनुवृत्तिपंथें आणावा। मूर्ध्निवरी ॥१४॥ तेथ आकाशीं मिळे
न मिळे। तैसा धरावा धारणाबळें। जंव मात्रात्रय मावळे। अर्धबिंबीं ॥१५॥ तंववरी तो समीरु। निराळीं
कीजे स्थिरु। मग लग्नीं जेविं उंकारु। बिंबींचि विलसे ॥१६॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

तैसें उं हें स्मरों सरे। आणि तेथेंचि प्राणु पुरे। मग प्रणवांतीं उरे। पूर्णघन जें ॥१७॥ म्हणोनि
प्रणवैकनामा। हें एकाक्षर ब्रह्म। जो माझें स्वरूप परमा। स्मरतसांता ॥१८॥ यापरी त्यजी देहातें। तो
त्रिशुद्धी पावे मातें। जया पावणया परातें। आणिक पावणें नाही ॥१९॥ येथ अर्जुना जरी विपायें।
तुझ्या जीवीं हन ऐसें जाये। ना हें स्मरण मग होये। कायसयावरी अंतीं ॥१२०॥ इंद्रियां अनुघडु
पडलिया। जीविताचें सुख बुडालिया। आंतुबाहेरी उघडलिया। मृत्युचिन्हें ॥१२१॥ ते वेळीं बैसावेंचि

कवणें। मग कवण निरोधी करणें। तेथ काह्याचेनि अंतःकरणें। प्रणव स्मरावा ॥२२॥ तरि अगा
ऐशिया ध्वनी। झणें थारा देशी हो मनीं। पै नित्य सेविला मी निदानीं। सेवकु होय ॥२३॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

जे विषयांसि तळांजळी देऊनि। प्रवृत्तीवरी निगड वाऊनि। मातें हृदयीं सूनि। भोगिताती
॥२४॥ परि भोगितया नाराणुका। भेटणें नाहीं क्षुधादिकां। तेथ चक्षुरादिकां। कवण पाडु ॥२५॥ ऐसे
निरंतर एकवटले। जे अंतःकरणीं मजशीं लिगटले। मीचि होऊनि आटले। उपासिती ॥२६॥ तयां
देहावसान जें पावे। तें तिहीं मातें स्मरावें। मग म्यां जरी पावावें। तरि उपास्ति ते कायसी ॥२७॥ पै
रंकु एक आडलेपणें। काकुळती अंतीं धांवां गा धांवां म्हणे। तरि तयाचिये ग्लानी धांवणें। काय न घडे
मज ॥२८॥ आणि भक्तांही तेचि दशा। तरी भक्तीचा सोसु कायसा। म्हणऊनि हा ध्वनी ऐसा। न
वाखाणावा ॥२९॥ तिहीं जे वेळीं मी स्मरावा। ते वेळीं स्मरला कीं पावावा। तो आभारुही जीवा।
साहवेचि ना ॥१३०॥ तें ऋणवैपण देखोनि आंगीं। मी आपुलियाचि उत्तीर्णत्वालागीं। भक्तांचियां
तनुत्यागीं। परिचर्या करी ॥३१॥ देहवैकल्याचा वारा। झणें लागेल या सुकुमारा। म्हणोनि आत्मबोधाचां
पांजिरां। सूयें तयातें ॥३२॥ वरि आपुलिया स्मरणाची उवाइली। हीं व ऐसी करीं साउली। ऐसेनि
नित्यबुद्धि संचली। मी आणीं तयातें ॥३३॥ म्हणोनि देहांतींचें सांकडें। माझिया कहींचि न पडे। मी

आपुलियातें आपुलीकडे। सुखेंचि आणीं ॥३४॥ वरचील देहाची गंवसणी फेडुनी। आहाच अहंकाराचे
रज झाडुनी। शुद्ध वासना निवडुनी। आपणपां मेळवीं ॥३५॥ आणि भक्तां तरी देहीं। विशेष
एकवंकीचा ठाव नाहीं। म्हणऊनि अव्हेरु करितां कांहीं। वियोगु ऐसा न वाटे ॥३६॥ नातरी
देहांतींचि मियां यावें। मग आपणपयातें न्यावें। हेंही नाहीं स्वभावं। जे आधींचि मज मीनले ॥३७॥
येरी शरीराचिया सलिलीं। असतेंपण हेचि साउली। वांचूनि चंद्रिका ते ठेली। चंद्रींच आहे ॥३८॥ ऐसे
जे नित्ययुक्ता। तयासि सुलभ मी सतत। म्हणऊनि देहांतीं निश्चिता। मीचि होती ॥३९॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

मग क्लेशतरुची वाडी। जे तापत्रयाग्नीची सगडी। जे मृत्युकाकासि कुरोंडी। सांडिली आहे
॥१४०॥ जें दैन्याचें दुभतें। जें महाभयातें वाढवितें। जें सकळ दुःखाचें पुरतें। भांडवल ॥४१॥ जें
दुर्मतीचें मूळ। जें कुकर्माचें फळ। जें व्यामोहाचें केवळ। स्वरूपचि ॥४२॥ जें संसाराचें बैसणें। जें
विकाराचें उद्यानें। जें सकळ रोगांचें भाणें। वाढिलें आहे ॥४३॥ जें काळाचा खिचउशिटा। जें
आशेचा आंगवठा। जन्ममरणाचा वोलिवटा। स्वभावं जें ॥४४॥ जें भुलीचें भरिंवा। जें विकल्पाचें
वोतिंवा। किंबहुना पेंवा। विंचुवांचें ॥४५॥ जें व्याघ्राचें क्षेत्र। जें पण्यांगनेचें मैत्र। जें विषयविज्ञानयंत्र।
सुपूजित ॥४६॥ जें लावेचा कळवळा। निवालिया विषोदकाचा गळाळा। जें विश्वासु आंगवळा।
संवचोराचा ॥४७॥ जें कोढियाचें खेंवा। जें काळसर्पाचें मार्दवा। जें गोरीचें स्वभावा। गायन जें ॥४८॥

जें वैरियाचा पाहुणेरा जें दुर्जनाचा आदरा हें असो जें सागरा अनर्थाचा ॥४९॥ जें स्वप्नीं देखिलें
स्वप्ना जें मृगजळें सासित्रलें वना जें धूम्ररजाचें गगना ओतलें आहे ॥५०॥ ऐसें जें हें शरीरा तें
ते न पवतीचि पुढती नरा जे होऊनि ठेले अपारा स्वरूप माझें ॥५१॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥५२॥

एन्हवीं ब्रह्मपणाचिये भडसे। न चुकतीचि पुनरावृत्तीचे वळसे। परि निवटलियाचें जैसें। पोट न
दुखे ॥५२॥ नातरी चेडिलियानंतरें। न बुडिजे स्वप्नींचेनि महापूरें। तेवीं मातें पावले ते संसारें।
लिंपतीचि ना ॥५३॥ एन्हवीं जगदाकाराचें सिरें। जें चिरस्थायीयांचे धुरे। ब्रह्मभुवन गा चवरें।
लोकाचळचें ॥५४॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्षद् ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥५५॥

जिये गांवींचा पहारु दिवोवेरी। एका अमरेंद्राचें आयुष्य न धरी। विळोनि पांती उठी एकीसरी।
चवदाजणांची ॥५५॥ जें चोकडिया सहस्र जाये। तें ठायेठावो विळुचि होये। आणि तैसेंचि सहस्रें
भरियें पाहें। रात्री जेथ ॥५६॥ येवढें अहोरात्र जेथिंचें। तेणें न लोटती जे भाग्याचे। देखती ते स्वर्गींचे।
चिरंजीव ॥५७॥ येरां सुरगणांची नवाई। विशेष सांगावी येथ काई। मुदला इंद्राचीचि दशा पाहीं। जे
दिहाचे चौदा ॥५८॥ परि ब्रह्मयाचियाहि आठां प्रहारांतें। आपुलियां डोळं देखते। आहाति गा

तयांतें। अहोरात्रविद म्हणिपे ॥५९॥

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे। रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥६०॥

तिये ब्रह्मभुवनीं दिवसें पाहे। ते वेळीं गणना केंही न समाये। ऐसें अव्यक्ताचें होये। व्यक्त विश्व
॥६०॥ पुढती दिहाची चौपाहारी फिटे। आणि हा आकारसमुद्र आटे। पाठीं तैसाचि मग पाहांटे।
भरां लागे ॥६१॥ शारदीयेचिये प्रवेशीं। अभ्रें जिरती आकाशीं। मग ग्रीष्मांतीं जैशी। निगती पुढती
॥६२॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते। रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥६३॥

तैशी ब्रह्मदिनाचिये आदी। हे भूतसृष्टीची मांदी। मिळे जंव सहस्रावधी। निमित्त पुरे ॥६३॥ पाठीं
रात्रींचा अवसरु होये। आणि विश्व अव्यक्तीं लया जाये। तोही युगसहस्र मोटका पाहे। आणि तैसेंचि
रचे ॥६४॥ हें सांगावया काय उपपत्ती। जे जगाचा प्रळयो आणि संभूती। इये ब्रह्मभुवनींचिया होती।
अहोरात्रामाजीं ॥६५॥ कैसें थोरिवेचें मान पाहें पां। तो सृष्टिबीजाचा साटोपा। परि पुनरावृत्तीचिया
मापा। शीग जाहला ॥६६॥ एन्हवीं त्रैलोक्य हें धनुर्धरा। तिये गांवींचा गा पसारा। तो हा दिनोदयीं
एकसरां। मांडत असे ॥६७॥ पाठीं रात्रींचा समो पावे। आणि अपैसाचि सांठवे। म्हणिये जेथिंचें तेथ
स्वभावे। साम्यासि ये ॥६८॥ जैसें वृक्षपण बीजासि आलें। कीं मेघ हें गगन जाहालें। तैसें अनेकत्व
जेथ सामावलें। तें साम्य म्हणिपे ॥६९॥

परस्तस्मात् तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः। यःस सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

तेथ समविषम न दिसे कांहीं। म्हणोनि भूतें हे भाष नाहीं। जेविं दूधचि जाहालिया दहीं। नामरूप जाय ॥१७०॥ तेविं आकारलोपासरिसें। जगाचें जगपण भ्रंशे। परि जेथें जाहालें तें जैसें। तैसेंचि असे ॥७१॥ तें तया नांव सहज अव्यक्ता। आणि आकारावेळीं तेंचि व्यक्ता। हें एकास्तव एक सूचिता। एन्हवीं दोनी नाहीं ॥७२॥ जैसें आटलिया रूपें। आटलेपण ते खोटी म्हणिपे। पुढती तो घनाकारु हारपे। जे वेळीं अळंकार होती ॥७३॥ इयें दोन्ही जैशीं होणीं। एकीं साक्षीभूत सुवर्णीं। तैसी व्यक्ताव्यक्ताची कडसणी। वस्तूचां ठायीं ॥७४॥ तें तरी व्यक्त ना अव्यक्ता। नित्य ना नाशवंता। या दोहीं भावाअतीता। अनादिसिद्ध ॥७५॥ जें हें विश्वचि होऊनि असे। परि विश्वपण नासिलेनि न नासे। अक्षरें पुसिल्या न पुसे। अर्थु जैसा ॥७६॥ पाहें पां तरंग होत जाता। परि तेथ उदक तें अखंड असता। तेंवीं भूतभावीं नाशिवंता। आर्विनाश जें ॥७७॥ नातरी आटतिये अळंकारीं। नाटतें कनक असे जयापरी। तेवीं मरतिये जीवाकरीं। अमर जें आहे ॥७८॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

जयातें अव्यक्त म्हणों ये कोडें। म्हणतां स्तुति हे ऐसें नावडे। जें मना बुद्धी न सांपडे। म्हणऊनियां ॥७९॥ आणि आकारा आलिया जयाचें। निराकारपण न वचे। आकारलोपें न विसंचे।

नित्यता गा ॥१८०॥ म्हणोनि अक्षर जें म्हणिजे। तेवींचि म्हणतां बोधुही उपजे। जयापरौता पैसु न देखिजे। या नाम परमगती ॥८१॥ पै आघवा इहीं देहपुरीं। आहे निजेलियाचे परी। जे व्यापारु करवी ना करी। म्हणऊनियां ॥८२॥ एन्हवीं जे शारीरचेष्टा। त्यांमाजी एकही न ठके गा सुभटा। दाहीं इंद्रियांचिया वाटा। वाहतचि आहाती ॥८३॥ उकलूं विषयांचा पेटा। होता मनाचां चोहटां। तो सुखदुःखाचा राजवांटा। भीतराहि पावे ॥८४॥ परि रावो पहुडलिया सुखें। जैसा देशींचा व्यापारु न ठके। प्रजा आपुलालेनि आर्भिलाखें। करितचि असती ॥८५॥ तैसें बुद्धीचें हन जाणणें। कां मनाचें घेणें देणें। इंद्रियांचें करणें। स्फुरण वायूचें ॥८६॥ हे देहक्रिया आघवी। न करवितां होय बरवी। जैसा न चलवितेनि रवी। लोकु चाले ॥८७॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यथा। यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥

अर्जुना तयापरी। सुतला ऐसा आहे शरीरीं। म्हणोनि पुरुषु गा अवधारीं। म्हणिपे जयातें ॥८८॥ आणि प्रकृतिपतिव्रते। पडिला एकपत्नीव्रतें। येणेंही कारणें जयातें। पुरुष म्हणों ये ॥८९॥ पै वेदांचें बहुवसपण। देखेचिना जयाचें आंगण। हें गगनाचें पांघरूण। होय देखा ॥९०॥ ऐसें जाणूनि योगीश्वरा। जयातें म्हणती परमपरा। जें अनन्यगतीचें घरा। गिवसीत ये ॥९१॥ जे तनूवाचाचितें। नाइकती दुजिये गोष्टीतें। तयां एकनिष्ठेचें पिकतें। सुक्षेत्र जें ॥९२॥ हें त्रैलोक्यचि पुरुषोत्तमु। ऐसा साचु जयांचा मनोधर्मु। तयां आस्तिकांचा आश्रमु। पांडवा गा ॥९३॥ जें निगर्वाचें गौरवा। जें निर्गुणाची

जाणिव। जें सुखाची राणिव। निराशांसी ॥९४॥ जें संतोषियां वाढिलें ताटा जें आर्चितां अनाथांचें
 मायपोटा भक्तीसी उजू वाटा जया गांवा ॥९५॥ हें एकैक सांगोनि वाया। काय फार करुं धनंजया।
 पें गेलिया जया ठाया। तो ठावोचि होइजे ॥९६॥ हिंवाचिया झुळुका। जैसे हिंवचि पडे उष्णोदका।
 कां समोर जालिया अर्का। तमचि प्रकाशु होय ॥९७॥ तैसा संसारु जया गांवा। गेला सांता पांडवा।
 होऊनि ठाके आघवा। मोक्षाचाचि ॥९८॥ तरि अग्नीमार्जीं आलें। जैसें इंधनचि आग्नि जहालें।
 पाठीं न निवडेचि कांहीं केलें। काष्ठपण ॥९९॥ नातरी साखरेचा माघौता। बुद्धिमंतपणेंही करितां।
 परि ऊंस नव्हे पंडुसुता। जियापरी ॥१००॥ लोहाचें कनक जहालें। हें एकें परिसें केलें। आतां
 आणिक कैचें तें गेलें। लोहत्व आणी ॥१०१॥ म्हणोनि तूप होऊनि माघौतें। जेवीं दुधपणा न येचि
 निरुतें। तेविं पावोनियां जयातें। पुनरावृत्ति नाही ॥१०२॥ तें माझें परमा साचोकारें निजधाम। हें
 आंतुवट तुज वर्मा दाविजत असे ॥१०३॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः। प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥१०३॥

तेवींचि आणिकेंही एकें प्रकारें। हें जाणतां आहे सोपारें। तरि देह सांडितेनि अवसरें। जेथ
 मिळती योगी ॥१०४॥ अथवा अवचटें ऐसें घडे। जे अनवसरें देह सांडे। तरि माघौतें येणें घडे।
 देहासीचि ॥१०५॥ म्हणोनि काळशुद्धी जरी देह ठेविती। तरी ठेवितखेवीं ब्रह्मचि होती। एन्हीवीं अकाळीं

तरी येती। संसारा पुढती ॥१०६॥ तैसें सायुज्य आणि पुनरावृत्ती। ये दोन्ही अवसराआधीन आहाती।
 तो अवसरु तुजप्रती। प्रसंगें सांगों ॥१०७॥ तरि ऐकें गा सुभटा। पातलिया मरणाचा माजिवटा। पांचें
 आपुलालिया वाटा। निघती अंतीं ॥१०८॥ ऐसा वरिपडिला प्रयाणकाळीं। बुद्धीतें भ्रमु न गिळी। स्मृति
 नव्हे आंधळी। न मरे मन ॥१०९॥ हा चेतनावर्गु आघवा। मरणीं असे टवटवा। परि अनुभविलिया
 ब्रह्मभावा। गंवसणी होऊनि ॥११०॥ ऐसा सावध हा समवावो। आणि निर्वाणवेन्हीं निर्वाहो। हें
 तरीच घडे जरी सावावो। अग्नीचा आथी ॥१११॥ पाहा पां वारेन कां उदव्रों। जें दिवियाचें दिवेपण
 झांके। तें असतीच काय देखे। दिठी आपुली ॥११२॥ तैसें देहांतींचेनि विषमवातें। देह आंत बाहेरि
 श्लेष्मा आते। तें विझोनि जाय उजितें। अग्नीचें जेव्हां ॥११३॥ ते वेळीं प्राणासीचि प्राणु नाही। तेथ
 बुद्धि असोनि करील काई। म्हणोनि अग्नीविण देहीं। चेतना न थरे ॥११४॥ अगा देहींचा आग्नि जरी
 गेला। तरी देह नव्हे चिखलु वोला। वायां आयुष्यवेळु आपुला। आंधारां गिंवसी ॥११५॥ आणि मागील
 स्मरण आघवें। तें तेणें अवसरें सांभाळावें। मग देह त्यजुनि मिळावें। स्वरूपीं कीं ॥११६॥ तंव तया
 देहश्लेष्माचां चिखलीं। चेतनाचि बुडोनि गेली। तेथ मागिली पुढिली हे ठेली। आठवण सहजें ॥११७॥
 म्हणोनि आदीचि अभ्यासु जो केला। तो मरण न येतांचि निमोनि गेला। जैसें ठेवणें न दिसतां
 मालवला। दीपु हातींचा ॥११८॥ आतां असो हें सकळ। जाण पां ज्ञानासि आग्नि मूळ। तया अग्नीचें
 प्रयाणीं बळ। संपूर्ण आथी ॥११९॥

आग्निज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्। तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

आंत आग्निज्योतीचा प्रकाश। बाहेरी शुक्लपक्ष परी दिवसु। आणि सामासांमार्जीं मासु। उत्तरायण ॥२२०॥ ऐसिया समायोगाची निरुती। लाहोनि जे देह ठेविती। ते ब्रह्मविद होती। परब्रह्म ॥२१॥ अवधारीं गा धनुर्धरा। येथवरी सामर्थ्य यया अवसरा। तेवींचि हा उजू मार्ग स्वपुरा। यावयासी ॥२२॥ एथ अग्नी हें पहिलें पायतरे। ज्योतिर्मय हें दुसरें। दिवस जाणें तिसरें। चौथें शुक्लपक्ष ॥२३॥ आणि सामास उत्तरायण। तें वरचील गा सोपान। येणें सायुज्यसिद्धिसदन। पावती योगी ॥२४॥ हा उत्तम काळु जाणिजे। यातें आर्चिरा मार्गु म्हणिजे। आतां अकाळु तोही सहजें। सांगेन आईक ॥२५॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्। तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥

तरि प्रयाणाचेनि अवसरें। वातुश्लेषु सुभरे। तेणें अंतःकरणीं आंधारें। कोंदलें ठाके ॥२६॥ सर्वे द्रियां लांकुड पडे। स्मृति भ्रमामार्जीं बुडे। मन होय वेडें। कोंडे प्राण ॥२७॥ अग्नीचें आग्निपण जाये। मग तो धूमचि अवघा होये। तेणें चेतना गिंवसिली ठाये। शरीरींची ॥२८॥ जैसें चंद्राआड आभाळ। सदट दाटे सजळ। मग गडद ना उजाळ। ऐसें झांवळें होय ॥२९॥ कां मरे ना सावधा। ऐसें जीवितासि पडे स्तब्ध। आयुष्य मरणाची मर्यादा वेळु ठाकी ॥३०॥ ऐसी मनबुद्धिकरणीं। सभोंवतीं धूमाकुळाची कोंडणी। तेथ जन्में जोडलिये वाहणी। युगचि बुडे ॥३१॥ हां गा हातींचें जे वेळीं जाये। ते वेळीं

आणिका लाभाची गोठी कें आहे। म्हणऊनि प्रयाणीं तंव होये। येतुली दशा ॥३२॥ आणि देहाआंतु ऐसी स्थिती। बाहेरि कृष्णपक्षु वरि राति। आणि सामासही ते वोडवती। दक्षिणायन ॥३३॥ इये पुनरावृत्तीचीं घराणीं। आघवीं एकवटती जयाचिया प्रयाणीं। तो स्वरूपसिद्धीची काहाणी। कैसेनि आइके ॥३४॥ ऐसा जयाचा देह पडे। तया योगी म्हणोनि चंद्रवरी जाणें घडे। मग तेथूनि मागुता बहुडे। संसारा ये ॥३५॥ आम्हीं अकाळु जो पांडवा। म्हणितला तो हा जाणावा। आणि हाचि धूम्रमार्गु गांवा। पुनरावृत्तीचिया ॥३६॥ येर तो आर्चिरा मार्गु। तो वसता आणि असलगु। साविया स्वस्त चांगु। निवृत्तीवरी ॥३७॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते। एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥३८॥

ऐसिया अनादि या दोन्ही वाटा। एकी उजू एकी अव्हांटा। म्हणऊनि बुद्धिपूर्वक सुभटा। दाविलिया तुज ॥३८॥ कां जे मार्गामार्ग देखावे। साच लटिकें वोळखावें। हिताहित जाणावें। हिताचिलागीं ॥३९॥ पाहें पां नाव देखतां बरवी। कोणी आड घाली काय अथावीं। कां सुपंथ जाणोनिया अडवीं। रिगवत असे ॥४०॥ जो विष अमृत वोळखे। तो अमृत काय सांडूं शके। तेविं जो उजू वाट देखे। तो अव्हांटा न वचे ॥४१॥ म्हणोनि फुडें। पारखावें खरे कुडें। पारखिलें तरी न पडे। अनवसरें कहीं ॥४२॥ एन्ही देहांतीं थोर विषम। या मार्गाचें आहे संभ्रम। जन्में अभ्यासिलियाचें हन काम। जाईल वायां ॥४३॥ जरी आर्चिरा मार्गु चुकलिया। अवचटें धूम्रपंथें पडलिया। तरी संसारपांतीं जुंतलिया।

आणि हां गा घट्टु जे वेळीं फुटे। ते वेळीं तेथिंचें आकाश लागे नीट वाटे। वाटा लागे तरि गगना
भेटे। एन्हवीं चुके ॥५३॥ पाहें पां ऐसें हन आहे। कीं तो आकारुचि म्हणों जाये। येर गगन तें गगनींचि
आहे। घटत्वाहि आधीं ॥५४॥ ऐसिया बोधाचेनि सुरवाडें। मार्गामार्गाचें सांकडें। तयां सोहंसिद्धा न
पडे। योगियांसी ॥५५॥ याकारणें पंडुसुता। तुवां होआवें योगयुक्ता। येतुलेनि सर्वकालीं साम्यता।
आपणपां होईल ॥५६॥ मग भलतेथ भलतेव्हां। देहबंधु असो अथवा जावा। परि अबंधा नित्य
ब्रह्मभावा। विघड नाही ॥५७॥ तो कल्पादि जन्मा नागवे। कल्पांतीं मरणें नाप्लवे। माजि
स्वर्गसंसाराचेनि लाघवें। झकवेना ॥५८॥ येणें बोधें जो योगी होये। तयासी या बोधाचेंचि नीटपण
आहे। कां जे भोगातें पेलूनि पाहें। निजरूपा ये ॥५९॥ पै गा इंद्रादिकां देवां। जयां सर्वस्व गाजती
राणिवा। तें सांडणें मानूनि पांडवा। डावली जो ॥२६०॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत् पुण्यफलं प्रदिष्टम्।

अत्येति तत् सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाऽद्यम् ॥२८॥

जरी वेदाध्ययनाचें जालें। अथवा यज्ञाचें शेतचि पिकलें। कां तपोदानांचें जोडलें। सर्वस्व हन जें
॥६१॥ तया आघवयांचि पुण्याचा मळा। भारु आंतौनि जया ये फळा। जें परब्रह्मा निर्मळा। सांठि न
सरे ॥६२॥ जें नित्यानंदाचेनि मानें। उपमेचा कांटाळां न दिसे सानें। पाहा पां वेदयज्ञादि साधनें।

जया सुखा ॥६३॥ जें विटे ना सरे। भोगितयाचेनि पवाडें पुरे। पुढती महासुखाचें सोयरें। भावंडचि
॥६४॥ ऐसें दृष्टीचेनि सुखपणें। जयासी अदृष्टाचें बैसणें। जें शतमखीही आंगवणें। नोहेचि एका
॥६५॥ तयाते योगीश्वर अलौकिकें। दिठीचेनि हाततुकें। अनुमानिती कौतुकें। तंव हळुवट आवडे
॥६६॥ मग तया सुखाची किरीटी। करुनियां गा पाउटी। परब्रह्माचिये पाठीं। आरुढती ॥६७॥ ऐसें
चराचरैकभाग्य। जें ब्रह्मेशां आराधनायोग्य। योगियांचें भोग्य। भोगधन जें ॥६८॥ जो सकळ कळांची
कळा। जो परमानंदाचा पुतळा। जो जिवाचा जिव्हाळा। विश्वाचिया ॥६९॥ जो सर्वज्ञतेचा वोलावा।
जो यादव कुळींचा कुळदिवा। तो कृष्ण जी पांडवा। प्रती बोलिला ॥२७०॥ ऐसा कुरुक्षेत्रींचा वृत्तांतु।
संजयो रायासी असे सांगतु। तेचि परियसा पुढां मातु। ज्ञानदेव म्हणे निवृत्तीचा ॥२७१॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ब्रह्माक्षरनिर्देशो नाम अष्टमोऽध्यायः

॥(श्लोक २८; ओव्या २७१)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय नववा

तरी अवधान एकवेळें दीजे। मग सर्वसुखासि पात्र होइजे। हें प्रतिज्ञोत्तर माझें। उघड ऐका ॥१॥
परि प्रौढी न बोलें हो जी। तुम्हां सर्वज्ञांचां समाजीं। देयावें अवधान हे माझी। विनवणी सलगीची
॥२॥ कां जे लळेयांचे लळे सरती। मनोरथांचे मनौरे पुरती। जरी माहेरें श्रीमंतें होती। तुम्हां ऐसी
॥३॥ तुमचेया दिठिवेयाचिये वोले। सासिन्नले प्रसन्नतेचे मळे। ते साउली देखोनि लोळें। श्रांतु जी मी
॥४॥ प्रभू तुम्ही सुखामृताचे डोहो। म्हणोनि आम्ही आपुलिया स्वेच्छा वोलावों लाहों। येथही जरी
सलगी करूं बिहों। तरी निवों कें पां ॥५॥ नातरी बालक बोबडां बोलीं। कां वांकुडां विचुकां पाउलीं।
तें चोज करुनि माउली। रिझे जेवीं ॥६॥ तेवीं तुम्हां संतांचा पढियावो। कैसेनि तरि आम्हांवरी हो।

या बहुवा आळुकिया जी आहों। सलगी करित ॥७॥ वांचूनि माझिये बोलतिये योग्यते। सर्वज्ञ
भवादृश श्रोते। काय धड्यावरी सारस्वतें। पढों सिकिजे ॥८॥ अवधारां आवडे तेसणा धुंधुरु। परि
महातेजीं न मिरवे काय करूं। अमृताचिया ताटीं वोगरूं। ऐसी रससोय केंची ॥९॥ अहो हिमकरासी
विंजणें। कीं नादापुढें आइकवणें। लेणियासी लेणें। हें कहीं आथी ॥१०॥ सांगां परिमळें काय
तुरंबावें। सागरें कवणे ठायीं नाहावें। हें गगनचि आडे आघवें। ऐसा पवाडु केंचा ॥११॥ तैसें तुमचें
अवधान धाये। आणि तुम्ही म्हणा हें होये। ऐसें वक्तृत्व कवणा आहे। जेणें रिझा तुम्ही ॥१२॥ तरि
विश्वप्रगटितया गभस्ती। हातिवेनि न कीजे आरती। कां चुळोदकें आपांपती। अघ्यु नेदिजे ॥१३॥
प्रभू तुम्ही महेशाचिया मूर्ती। आणि मी दुबळा आर्चितसें भक्ती। म्हणोनि बेल जन्ही गंगावती। तन्ही
स्वीकाराल कीं ॥१४॥ बाळक बापाचिये ताटीं रिगे। रिगौनि बापातेंच जेवळं लागे। कीं तो संतोषलेनि
वेगें। मुखचि वोडवी ॥१५॥ तैसा मी जरी तुम्हांप्रती। चावटी करीतसें बाळमती। तरी तुम्हीं तोषिजे
ऐसी जाती। प्रेमाची या ॥१६॥ आणि तेणें आपुलेपणाचेनि मोहें। तुम्ही संत घेतले असा बहुवे।
म्हणोनि केलिये सलगीचा नोहे। आभारु तुम्हां ॥१७॥ अहो तान्ह्याची लागे झटे। तरी आर्धिकचि
पान्हा फुटे। रोषें प्रेम दुणवटे। पढियंतयाचेनि ॥१८॥ म्हणऊनि मज लेंकुरवाचेनि बोलें। तुमचें
कृपाळूपण निदैलें। तें चेइलें हें जी जाणवलें। यालागीं बोलिलों मी ॥१९॥ एन्हीवीं चांदिणें पिकविजत
आहे चेपणी। कीं वारया घापत आहे वाहणी। हां हो गगनासि गंवसणी। घालिजे केवीं ॥२०॥ आइकां

* पाणी वोथिजावें न लगे। नवनीतीं माथुला न रिगे। तेविं लाजिलें व्याख्यान न निगे। देखोनि जयांतें *
 * ॥२१॥ हें असो शब्दब्रह्म जिये बाजे। शब्द मावळलेया निवांतु निजे। तो गीतार्थु मन्हाटिया बोलिजे। *
 * हा पाडु काई ॥२२॥ परि ऐसियाही मज धिंवसा। तो पुढतियाचि येकी आशा। जे धिटींवा करुनि *
 * भवादृशां। पढियंतया होआवें ॥२३॥ परि आतां चंद्रापासोनि निववितें। जें अमृताहूनि जीववितें। *
 * तेणें अवधानें कीजो वाढतें। मनोरथा माझिया ॥२४॥ कां जें दिठिवा तुमचा वरुषे। तें सकळार्थसिद्धि *
 * मती पिके। एन्हीं कोंभेला उन्मेषु सुके। जरी उदास तुम्ही ॥२५॥ सहजें तरी अवधारा। वक्तृत्वा *
 * अवधानाचा होय चारा। तरी दोदें पेलती अक्षरां। प्रमेयाचीं ॥२६॥ अर्थ बोलाची वाट पाहे। तेथ *
 * आर्भिप्रावो आर्भिप्रायातें विये। भावाचा फुलौरा होत जाये। मतिवरी ॥२७॥ म्हणूनि संवादाचा *
 * सुवावो ढळे। तरी हृदयाकाश सारस्वतें वोळे। आणि श्रोता दुश्चिता तरि वितुळे। मांडला रसु ॥२८॥ *
 * अहो चंद्रकांतु द्रवता कीर होये। परि ते हातवटी चंद्रीं कीं आहे। म्हणऊनि वक्ता तो वक्ताचि नोहे। *
 * श्रोतेनविण ॥२९॥ परी आतां आमुतें गोड करावें। ऐसें हें तांदुळीं कासया विनवावें। साइखडियानें *
 * काइ प्रार्थविं। सूत्रधारातें ॥३०॥ काय तो बाहुलियांचिया काजा नाचवी। कीं आपुलिये जाणिवेची *
 * कळा वाढवी। म्हणऊनि आम्हां या ठेवाठेवी। काय काज ॥३१॥ तंव गुरु म्हणती काइ जाहलें। हें *
 * समस्तही आम्हां पावलें। आतां सांगें जें निरोपिलें। नारायणें ॥३२॥ येथ संतोषोनि निवृत्तिदासें। जी *

* जी म्हणऊनि उल्हासें। अवधारां श्रीकृष्ण ऐसें। बोलते जाहले ॥३३॥ *
 * **श्रीभगवानुवाच :-** इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे। ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्षयसेऽशुभात् ॥१॥ *
 * नातरि अर्जुना हें बीज। पुढती सांगिजेल तुज। जें हें अंतःकर्णीचें गुज। जीवाचिये ॥३४॥ येणें *
 * मानें जीवाचें हियें फोडावें। मग गुज कां पां मज सांगावें। ऐसें कांहीं स्वभावे। कल्पिशी जरी ॥३५॥ *
 * तरी परियेसीं प्राज्ञा। तूं आस्थेचीच संज्ञा। बोलिलिये गोष्टीची अवज्ञा। नेणसी करूं ॥३६॥ म्हणोनि *
 * गूढपण आपुलें मोडो। वरि न बोलावेंही बोलावें घडो। परि आमुचिये जीवींचें पडो। तुझां जीवीं *
 * ॥३७॥ अगा थानीं कीर दूध गूढ। परि थानासीचि नव्हे कीं गोडा म्हणोनि सरो कां सेवितयाची चाडा। *
 * जरी अनन्य मिळे ॥३८॥ मुडाहूनि बीज काढिलें। मग निर्वाळलिये भूमी पेरिलें। तरि तें सांडीविखुरीं *
 * गेलें। म्हणों ये कायी ॥३९॥ यालागीं सुमनु आणि शुद्धमती। जो आर्निदकु अनन्यगती। पै गा गौप्यही *
 * परी तयाप्रती। चावळिजे सुखें ॥४०॥ तरि प्रस्तुत आतां गुणीं इहीं। तूं वांचूनि आणिक नाहीं। *
 * म्हणोनि गुज तरी तुझां ठायीं। लपवूं नये ॥४१॥ आतां किती नावानावा गुज। म्हणतां कानडें वाटेल *
 * तुज। तरि ज्ञान सांगेन सहज। विज्ञानेंसीं ॥४२॥ परि तेंचि ऐसेनि निवाडें। जैसें भेसळलें खरें कुडें। *
 * मग काढिजे फाडोवाडें। पारखूनियां ॥४३॥ कां चांचूचेनि सांडसें। खांडिजे पय पाणी राजहंसें। तुज *
 * ज्ञान विज्ञान तैसें। वांटूनि देऊं ॥४४॥ मग वारयाचियां धारसां। पडिला कोंडा कां नुरेचि जैसा। *
 * आणि अन्नकणाचा आपैसा। राशि जोडे ॥४५॥ तैसें जें जाणितलेयासाठीं। संसार संसाराचिये *

गांठी। लाऊनि बैसवी पाटीं। मोक्षश्रियेचां ॥४६॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्। प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥

जें जाणणेयां अवघीयांचां गांवीं। गुरुत्वाची आचार्यपदवी। जें सकळ गुह्यांचा गोसावी। पवित्रां रावो ॥४७॥ आणि धर्माचें निजधाम। तेंविंचि उत्तमाचें उत्तम। पै जया येतां नाहीं काम। जन्मांतराचें ॥४८॥ मोटकें गुरुमुखें उदैजत दिसे। आणि हृदयीं स्वयंभचि असे। प्रत्यक्ष फावो लागे तैसें। आपैसया ॥४९॥ तेविंचि पै गा सुखाचां पाउटीं। चढतां येइजे जयाचिया भेटी। मग भेटल्या कीर मिठी। भोगणेयाहि पडे ॥५०॥ परि भोगाचिया ऐलीकडिलिये मेरे। चित्त उभें ठेलेंचि सुखा भरे। ऐसें सुलभ आणि सोपारें। वरि परब्रह्म ॥५१॥ पै गा आणिकही एक याचें। जें हातां आले तरी न वचे। आणि अनुभवितां कांहीं न वचे। वरि विटेहि ना ॥५२॥ येथ जरी तूं तार्किका। ऐसी हन घेसी शंका। ना येवढी वस्तु हे लोकां। उरली केविं पां ॥५३॥ एकोत्तरेयाचिया वाढी। जे जळतिये आगीं घालिती उडी। ते अनायासें स्वगोडी। सांडिती केविं ॥५४॥ तरि पवित्र आणि रम्य। तेविंचि सुखोपायेंचि गम्य। आणि स्वसुख परि धर्म्य। वरि आपणपां जोडे ॥५५॥ ऐसा अवघाचि सुरवाडु आहे। तरी जनाहार्तीं केविं उरों लाहे। हा शंकेचा ठाव कीर होये। परि न धरावी तुवां ॥५६॥

अश्रद्धधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप। अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

पाहें पां दूध पवित्र आणि गोड। पासीं त्वचेचिया पदराआड। परि तें अव्हेरुनि गोचिड। अशुद्ध काय नेघती ॥५७॥ कां कमलकंदा आणि दर्दुरीं। नांदणूक एकेचि घरीं। परि परागु सेविजे भ्रमरीं। जवळिलां चिखलुचि उरे ॥५८॥ नातरी निदैवाचां परिवरीं। लोह्या रुतलिया आहाति सहस्रवरीं। परि तेथ बैसोनि उपवासु करी। कां दरिद्रें जिये ॥५९॥ तैसा हृदयामध्यें मी रामु। असतां सर्वसुखाचा आरामु। कीं भ्रांतासि कामु। विषयावरी ॥६०॥ बहु मृगजळ देखोनि डोळां। थुंकिजे अमृताचा गिळितां गळाळा। तोडिला परिसु बांधिला गळा। शुक्तिकालाभें ॥६१॥ तैसीं अहंमतेचिये लवडसवडीं। मातें न पवतीचि बापुडीं। म्हणोनि जन्ममरणाची दुथडी। डहुळितें ठेलीं ॥६२॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥४॥

एन्हवीं मी तरी कैसा। मुखाप्रति भानु कां जैसा। कहीं नसे न दिसे ऐसा। वाणीचा नव्हें ॥६३॥ माझेया विस्तारलेपणा नांवें। हें जगचि नोहे आघवें। जैसें दूध मुरालें स्वभावें। तरि तेंचि दहीं ॥६४॥ कां बीजचि जाहलें तरु। अथवा भांगारचि अळंकारु। तैसा मज एकाचा विस्तारु। तें हें जग ॥६५॥ हें अव्यक्तपणें थिजलें। तेंचि मग विश्वाकारें वोथिजलें। तैसें अमूर्तमूर्ति मियां विस्तारलें। त्रैलोक्य जाणें ॥६६॥ महदादि देहांतें। इयें अशेषेंही भूतें। परि माझां ठायीं बिंबते। जैसे जळीं फेण ॥६७॥ परि तया फेणांआंतु पाहतां। जेवीं जळ न दिसे पंडुसुता। नातरी स्वप्नींची अनेकता। चेइलिया नोहिजे ॥६८॥ तैसीं भूतें इयें माझां ठायीं। बिंबती तयांमाजि मी नाहीं। इया उपपत्ती तुज पाहीं।

सांगितलिया मागां ॥६९॥ म्हणऊनि बोलिलिया बोलाचा आर्तिसो। न कीजे यालागीं हें असो। तरी मजआंत पैसो। दिठी तुझी ॥७०॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥५॥

आमचा प्रकृतीपैलीकडील भावो। जरी कल्पनेवीण लागसी पाहों। तरी मजमाजि भूतें हेंही वावो। जे मी सर्व म्हणउनी ॥७१॥ एन्हवीं संकल्पाचिये सांजवेळे। नावेक तिमिरेजती बुद्धीचे डोळे। म्हणोनि अखंडित परि झांवळें। भूतभिन्न ऐसें देखें ॥७२॥ तेचि संकल्पाची सांज जें लोपे। तें अखंडितचि आहे स्वरूपें। जैसें शंका जातखेंवो लोपे। सापपण माळेचें ॥७३॥ एन्हवीं तरी भूमीआंतूनि स्वयंभा। काय घडेयागाडगेयांचे निघती कोंभा। परि ते कुलालमतीचे गर्भ। उमटले कीं ॥७४॥ नातरी सागरींचां पाणीं। काय तरंगाचिया आहाती खाणी। ते अवांतर करणी। वारयाची नव्हे ॥७५॥ पाहें पां कापसाचां पोटीं। काय कापडाची होती पेटी। तो वेढितयाचिया दिठी। कापड जाहला ॥७६॥ जरी सोनें लेणें होऊनि घडे। तरी तयाचें सोनेंपण न मोडे। येर अळंकार हे वरचिलीकडे। लेतयाचेनि भावें ॥७७॥ सांगें पडिसादाची प्रत्युत्तरें। कां आरिसां जें आविष्करे। तें आपलें कीं साचोकारें। तेथेंचि होतें ॥७८॥ तैसी इये निर्मळे माझां स्वरूपीं। जो भूतभावना आरोपी। तयासि तयाचां संकल्पीं। भूताभासु असे ॥७९॥ तेचि कल्पिती प्रकृती पुरे। आणि भूताभासु आधींच सरे। मग स्वरूप उरे

एकसरें। निखळ माझें ॥८०॥ हें असो आंगीं भरलिया भवंडी। जैशा भोंवत दिसती अरडीदरडी। तैशी आपुलिया कल्पना अखंडीं। गमती भूतें ॥८१॥ तेचि कल्पना सांडूनि पाहीं। तरि मी भूतीं भूतें माझिया ठायीं। हें स्वप्नींही परि नाहीं। कल्पावयाजोगें ॥८२॥ आतां मी एक भूतातें धर्ता। अथवा भूतांमाजि मी असता। या संकल्पसन्निपाता। आंतुलिया बोलिया ॥८३॥ म्हणोनि परियेसीं गा प्रियोत्तमा। यापरी मी विश्वेंसीं विश्वात्मा। जो इया लटकिया भूतग्रामा। भाव्यु सदा ॥८४॥ रश्मीचेनि आधारे जैसें। नव्हतेंचि मृगजळ आभासे। माझां ठायीं भूतजात तैसें। आणि मातेंही भावीं ॥८५॥ मी ये परीचा भूतभावनु। परि सर्व भूतांसि आर्भिन्नु। जैसी प्रभा आणि भानु। एकचि ते ॥८६॥ हा आमुचा ऐश्वर्ययोगु। तुवां देखिला कीं चांगु। आतां सांगें कांहीं एथ लागु। भूतभेदाचा असे ॥८७॥ यालागीं मजपासूनि भूतें। आनें नव्हती हें निरुतें। आणि भूतावेगळिया मातें। कहींच न मनीं हो ॥८८॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्। तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

पें गगन जेवढें जैसें। पवनु गगनीं तेवढाचि असे। सहजें हालविलिया वेगळा दिसे। एन्हवीं गगन तेंचि तो ॥८९॥ तैसें भूतजात माझां ठायीं। कल्पिजे तरी आभासे कांहीं। निर्विकल्पीं तरि नाहीं। तेथ मीचि मी आघवें ॥९०॥ म्हणऊनि नाहीं आणि असे। हें कल्पनेचेनि सौरसें। जे कल्पनालोपें भ्रंशे। आणि कल्पनेसवें होय ॥९१॥ तेंचि कल्पितें मुदल जाये। तें असें नाहीं हें कें आहे। म्हणऊनि पुढती तूं पाहें। हा ऐश्वर्ययोगु ॥९२॥ ऐसिया प्रतीतिबोधसागरीं। तूं आपणेयातें कल्लोळु एक करीं।

मग जंव पाहासी चराचरीं। तंव तूंचि आहासी ॥९३॥ या जाणण्याचा चवो। तुज आला ना म्हणती देवो। तरी आतां द्वैतस्वप्न वावो। जालें कीं ना ॥९४॥ तरी पुढती जरी विपायें। बुद्धीसि कल्पनेची झोंप ये। तरी अभेदबोधु जाये। जें स्वप्नीं पडिजे ॥९५॥ म्हणोनि ये निद्रेची वाट मोडे। निखळ उद्धोधाचेंचि आपणपें घडे। ऐसें वर्म जें आहे फुडें। तें दावों आतां ॥९६॥ तरी धनुर्धरा धैर्या। निकें अवधान देई बा धनंजया। पै सर्व भूतांतें माया। करी हरी गा ॥९७॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्। कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥

जिये नांव गा प्रकृती। जे द्विविध सांगितली तुजप्रती। एकी अष्टधा भेदव्यक्ती। दुजी जीवरूपा ॥९८॥ हा प्रकृतीविखो आघवा। तुवां मागां परिसिलासे पांडवा। म्हणोनि असो काड सांगावा। पुढतपुढती ॥९९॥ तरी ये माझिये प्रकृती। महाकल्पाचां अंतीं। सर्व भूतें अव्यक्तीं। ऐक्यासी येती ॥१००॥ ग्रीष्माचां आर्तिरसीं। सबीजे तृणें जैसीं। मागुती भूमीसी। सुलीनें होती ॥१॥ कां वार्षिये ढेंढें फिटे। जेव्हां शारदीयेचा अनुघडु फुटे। तेव्हां घनजात आटे। गगनींचें गगनीं ॥२॥ नातरी आकाशाचिये खोंपे। वायु निवांतुचि लोपे। कां तरंगता हारपे। जळीं जेवीं ॥३॥ अथवा जागिनलिये वेळे। स्वप्न मनींचें मनीं मावळे। तैसें प्राकृत प्रकृती मिळे। कल्पक्षयीं ॥४॥ मग कल्पादीं पुढती। मीचि सृजीं ऐसी वदंती। तरी इयेविषयीं निरुती। उपपत्ति आइक ॥५॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः। भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

तरी हेचि प्रकृति किरीटी। मी स्वकीया सहजें आर्धिष्टीं। तेथ तंतूसमवायपटीं। जेविं विणावणी दिसे ॥६॥ मग तिये विणावणीचेनि आधारें। लहानां चौकडियां पटत्व भरे। तैसी पंचात्मकें आकारें। प्रकृतिचि होये ॥७॥ जैसें विरजणियाचेनि संगें। दूधचि आटेजों लागे। तैशी प्रकृति आंगा रिगे। सृष्टिपणाचिया ॥८॥ बीज जळाची जवळीक लाहे। आणि तेंचि शाखोपशाखीं होये। तैसें मज करणें आहे। भूतांचें हें ॥९॥ अगा नगर हें रायें केलें। या म्हणण्या साचपण कीर आलें। परि निरुतें पाहतां काय शिणले। रायाचे हात ॥१०॥ आणि मी प्रकृति आर्धिष्टीं तें कैसें। जैसा स्वप्नीं जो असे। मग तोचि प्रवेशे। जागृतावस्थे ॥११॥ तरि स्वप्नौनि जागृती येतां। काय पाय दुखती पंडुसुता। कीं स्वप्नामार्जीं असतां। प्रवासु होय ॥ १२॥ या आघवियाचा आर्भिप्रावो कायी। जे हें भूतसृष्टीचें कांहीं। मज एकही करणें नाहीं। ऐसाचि अर्थु ॥१३॥ जैशी रायें आर्धिष्ठिली प्रजा। व्यापारे आपुलालिया काजा। तैसा प्रकृतिसंगु माझा। येर करणें तें इयेचें ॥१४॥ पाहें पां पूर्णचंद्राचिये भेटी। समुद्र भरतें अपार दाटी। तेथ चंद्रासि काय किरीटी। उपखा पडे ॥१५॥ जड परि जवळिका। लोह चळे तरि चळो कां। कवणु शीणु भ्रामका। सन्निधानाचा ॥१६॥ किंबहुना यापरी। मी निजप्रकृति अंगींकारीं। आणि भूतसृष्टी एकसरी। प्रसवोंचि लागे ॥१७॥ जो हा भूतग्रामु आघवा। असे प्रकृतिआधीन पांडवा। जैसी बीजाचिया वेलपालवा। समर्थ भूमि ॥१८॥ नातरी बाळादिकां वयसां। गोसावी देहसंगु

जैसा। अथवा घनावळी आकाशा। वार्षियें जेवीं ॥१९॥ कां स्वप्नासि कारण निद्रा। तैसी प्रकृति हे नरेंद्रा। या अशेषाहि भूतसमुद्रा। गोसाविणी गा ॥१२०॥ स्थावरा आणि जंगमा। स्थूळा अथवा सूक्ष्मा। हे असो भूतग्रामा। प्रकृतिचि मूळ ॥२१॥ म्हणोनि भूतें हन सृजावीं। कां सृजिलीं प्रतिपाळावीं। इयें करणीं न येती आघवीं। आमुचिया आंगा ॥२२॥ जळीं चंद्रिकेचिया पसरती वेली। ते वाढी चंद्रें नाहीं वाढविली। तेवि मातें पावोनि ठेलीं। दुरी कर्म ॥२३॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय। उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥

आणि सुटलिया सिंधुजळाचा लोटु। न शके धरूं सैंधवाचा घाटु। तेवि सकळ कर्मा मीच शेवटु। ती काइ बांधती मातें ॥२४॥ धूम्ररजांची पिंजरी। वाजतिया वायूतें जरी होकारी। कां सूर्यबिंबामाझारीं। आंधारें रिगे ॥२५॥ हें असो पर्वताचिये हृदयींचें। जेविं पर्जन्यधारास्तव न खोंचे। तेविं कर्मजात प्रकृतीचें। न लगे मज ॥२६॥ एन्हवीं इये प्राकृतीं विकारीं। एकु मीचि आहे अवधारीं। परि उदासीनाचिया परी। करीं ना करवी ॥२७॥ दीपु ठेविला परिवरीं। कवणातें नियमी ना निवारी। आणि कवण कवणिये व्यापारीं। राहाटे तेंहि नेणे ॥२८॥ तो जैसा का साक्षिभूतु। गृहव्यापारप्रवृत्तिहेतु। तैसा भूतकर्मी अनासक्तु। मी भूतीं असें ॥२९॥ हा एकचि आर्भिप्रावो पुढतपुढती। काय सांगों बहुतां उपपत्तीं। येथ एकवेळं सुभद्रापती। येतुलें जाण पां ॥१३०॥

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। हेतुनानेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते ॥१०॥

जे लोकचेष्टां समस्तां। जैसा निमित्तमात्र कां सविता। तैसा जगत्प्रभवीं पंडुसुता। हेतु मी जाणें ॥३१॥ कां जें मियां आर्धिष्ठिलिया प्रकृती। होती चराचराचिया संभूती। म्हणोनि मी हेतु हें उपपत्ती। घडे यया ॥३२॥ आतां येणें उजिवडें निरुतें। न्याहाळीं पां ऐश्वर्ययोगातें। जे माझी ठायीं भूतें। परी भूतीं मी नसें ॥३३॥ अथवा भूतें ना माझां ठायीं। आणि भूतांमाजि मी नाहीं। या खुणा तूं कही। चुकों नको ॥३४॥ हें सर्वस्व आमुचें गूढ। परि दाविलें तुज उघडा। आतां इंद्रियां देऊनि कवाडा। हृदयीं भोगीं ॥३५॥ हा दंशु जंव नये हातां। तंव माझें साचोकारेपण पार्था। न संपडे गा सर्वथा। जेविं भुशीं कणु ॥३६॥ एन्हवीं अनुमानाचेनि पैसें। आवडे कीर कळलें ऐसें। परि मृगजळाचेनि वोलांशें। काय भूमि तिमे ॥३७॥ जें जाळ जळीं पांगिलें। तेथ चंद्रबिंब दिसे आंतुडलें। परि थडिये काढूनि झाडिलें। तेव्हां बिंब कें सांगें ॥३८॥ तैसें बोलवरि वाचाबळें। वायांचि झकविजती प्रतीतीचे डोळे। मग साचोकारें बोधावेळे। आथि ना होईजे ॥३९॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥

किंबहुना भवा बिहा या। आणि साचें चाड आथि जरी मियां। तरि तुम्हीं गा उपपत्ती इया। जतन कीजे ॥१४०॥ एन्हवीं वेधली दिठी कवळें। ते चांदणियातें म्हणे पिवळें। तेविं माझ्यां स्वरूपीं निर्मळे। देखाल दोष ॥४१॥ नातरी ज्वरें विटाळलें मुखा। ते दुधातें म्हणे कडू विखा। तेविं अमानुषा मानुषा

* मानाल मातें ॥४२॥ म्हणऊनि पुढती तूं धनंजया। झणें विसंबसी या आर्भिप्राया। जे इया स्थूलदृष्टी *
 * वायां। जाइजेल गा ॥४३॥ पैं स्थूलदृष्टी देखती मातें। तेंचि न देखणें जाण निरुतें। जैसें स्वप्नींचेनि *
 * अमृतें। अमरा नोहिजे ॥४४॥ एन्हवीं स्थूलदृष्टी मूढ। मातें जाणती कीर दृढ। परि तें जाणणेंचि *
 * जाणणेया आडा। रिगोनि ठाके ॥४५॥ जैसा नक्षत्राचिया आभासा-। साठीं घातु झाला तया हंसा। *
 * मार्जीं रत्नबुद्धीचिया आशा। रिगोनियां ॥४६॥ सांगें गंगा या बुद्धी मृगजळ। ठाकोनि आलियाचें *
 * कवण फळ। काय सुरतरु म्हणोनि बाबुळ। सेविली करी ॥४७॥ हा निळयाचा दुसरा। या बुद्धी हातु *
 * घातला विखारा। कां रत्नें म्हणोनि गारा। वेंची जेविं ॥४८॥ अथवा निधान हें प्रगटलें। म्हणोनि *
 * खदिरांगार खोळे भरिले। कां साउली नेणतां घातलें। कुहां सिंहें ॥४९॥ तेविं मी म्हणोनि प्रपंचीं। *
 * जिहीं बुडी दिधली कृतनिश्चयाची। तिहीं चंद्रासाठीं जेविं जळींची। प्रतिमा धरिली ॥५०॥ तैसा *
 * कृतनिश्चय वायां गेला। जैसा कोणही एकु कांजी प्याला। मग परिणाम पाहों लागला। अमृताचा *
 * ॥५१॥ तैसें स्थूलाकारीं नाशिवंते। भरंवसा बांधोनि चितें। पाहती मज आर्विनाशातें। तरी केंचा *
 * दिसें। ॥५२॥ काइ पश्चिमसमुद्राचिया तटा। निधिजत आहे पूर्विलिया वाटा। कां कोंडा कांडतां *
 * सुभटा। कणु आतुडे ॥५३॥ तैसें विकारलें हें स्थूळ। जाणितलेया मी जाणवतसें केवळ। काइ फेण *
 * पितां जळ। सेविलें होय ॥५४॥ म्हणोनि मोहिलेनि मनोधर्में। हेंचि मी मानूनि संभ्रमें। मग येथिंचीं *

* जियें जन्मकर्में। तियें मजचि म्हणती ॥५५॥ येतुलेनि अनामा नाम। मज आर्क्रियासि कर्म। विदेहासि *
 * देहधर्म। आरोपिती ॥५६॥ मज आकारशून्या आकारु। निरुपाधिका उपचारु। मज विधिविवर्जिता *
 * व्यवहारु। आचारादिक ॥५७॥ मज वर्णहीना वर्णु। गुणातीतासि गुणु। मज अचरणा चरणु। अपाणिया *
 * पाणी ॥५८॥ मज अमेया मान। सर्वगतासी स्थान। जैसें सेजेमाजी वन। निदेला देखे ॥५९॥ तैसें *
 * अश्रवणा श्रोत्र। मज अचक्षूसी नेत्र। अगोत्रा गोत्र। अरूपा रूप ॥६०॥ मज अव्यक्तासि व्यक्ती। *
 * अनार्तासी आर्ती। स्वयंतृप्ता तृप्ती। भाविती गा ॥६१॥ मज अनावरणा प्रावरण। भूषणातीतासि *
 * भूषण। मज सकळकारणा कारण। देखती ते ॥६२॥ मज सहजातें करिती। स्वयंभातें प्रतिष्ठिती। *
 * निरंतरातें आव्हानिती। विसर्जिती गा ॥६३॥ मी सर्वदा स्वतःसिद्धु। तो कीं बाळ तरुण वृद्धु। मज *
 * एकरूपा संबंधु। जाणती ऐसे ॥६४॥ मज अद्वैतासि दुजें। मज अकर्तयासि काजें। मी अभोक्ता का *
 * भुजें। ऐसें म्हणती ॥६५॥ मज अकुळाचें कुळ वानिती। मज नित्याचेनि निधनें शिणती। मज *
 * सर्वातरातें कल्पिती। आर मित्र गा ॥६६॥ मी स्वानंदाभिरामु। तया मज अनेकां सुखांचा कामु। *
 * अवघाची मी असे समु। कीं म्हणती एकदेशी ॥६७॥ मी आत्मा एक चराचरीं। म्हणती एकाचा केंपक्ष *
 * करीं। आणि कोपोनि एकातें मारीं। हेंचि वाढविती ॥६८॥ किंबहुना ऐसे समस्त। जे हे मनुष्यधर्म *
 * प्राकृत। तयाचि नांव मी ऐसें विपरीत। ज्ञान तयांचें ॥६९॥ जंव आकारु एक पुढां देखती। तंव हा *
 * देव येणें भावें भजती। मग तोचि विघडलिया टाकिती। नाहीं म्हणोनि ॥७०॥ मातें येणें येणें *

प्रकारें। जाणती मनुष्य ऐसेनि आकारें। म्हणऊनि ज्ञानचि तें आंधारें। ज्ञानासि करी ॥७१॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥१२॥

यालागीं जन्मलेचि ते मोघा। जैसें वार्षियेवीण मेघा। कां मृगजळाचे तरंगा। दुरूनीचि पाहावे ॥७२॥ अथवा कोल्हेरीचे आर्सिवारा। नातरीं वोडंबरीचे अळंकारा। कीं गंधर्वनगरीचे आवारा। आभासती कां ॥७३॥ साबरी वाढिन्नल्या सरळा। वरी फळ ना आंतु पोकळा। कां स्तन जाले गळां। शेळिये जैसे ॥७४॥ तैसें मूर्खाचें तयां जियालें। आणि धिग् कर्म तयांचें निपजलें। जैसें सांवरी फळ आलें। घेपे ना दीजे ॥७५॥ मग जें कांहीं ते पढिन्नले। तें मर्कटें नारळ तोडिले। कां आंधळ्या हातीं पडिलें। मोतीं जैसें ॥७६॥ किंबहुना तयांचीं शास्त्रें। जैशीं कुमारीं हातीं दिधलीं शस्त्रें। कां अशौच्या मंत्रें। बीजें कथिलीं ॥७७॥ तैसें ज्ञानजात तयां। आणि जें कांहीं आचरलें गा धनंजया। तें आघवेंचि गेलें वायां। जे चित्तहीन ॥७८॥ पै तमोगुणाची राक्षसी। जे सद्बुद्धीतें ग्रासी। विवेकाचा ठावोचि पुसी। निशाचरी ॥७९॥ तिये प्रकृती वरपडे जाले। म्हणऊनि चिंतेचेनि कपोलें गेले। वरि तामसीयेचिये पडिले। मुखामार्जी ॥१८०॥ जेथ आशेचिये लाळे। आंतु हिंसा जीभ लोळे। तेवींचि संतोषाचे चाकळे। अखंड चघळी ॥८१॥ जे अनर्थाचे कानवेरी। आवाळुवें चाटीत निघे बाहेरी। जे प्रमादपर्वतींची दरी। सदाचि मातली ॥८२॥ जेथ द्वेषाचिया दाढा। खसखसां ज्ञानाचा करिती रगडा। जे अगस्तीगवसणी मूढां।

स्थूलबुद्धि ॥८३॥ ऐसे आसुरिये प्रकृतीचां तोंडीं। जे जाले गा भूतोंडीं। ते बुडोनि गेले कुंडीं। व्यामोहाचां ॥८४॥ एवं तमाचिये पडिले गर्ते। न पविजतीचि विचाराचेनि हातें। हें असो ते गेले जेथें। ते शुद्धीचि नाहीं ॥८५॥ म्हणोनि असोतु इयें वायाणीं। कायशीं मूर्खाचीं बोलणीं। वायां वाढवितां वाणी। शिगेल हन ॥८६॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः। भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥

ऐसें बोलिलें देवें। तेथ जी म्हणितलें पांडवें। आइकें जेथ वाचा विसवे। ते साधुकथा ॥८७॥ तरी जयांचये चोखटे मानसीं। मी होऊनि असें क्षेत्रसंन्यासी। जयां निजेलियांतें उपासी। वैराग्य गा ॥८८॥ जयांचिया आस्थेचिया सद्भावा। आंतु धर्म करी राणिवा। जयांचें मन ओलावा। विवेकासी ॥८९॥ जे ज्ञानगंगे नाहाले। पूर्णता जेऊनि धाले। जे शांतीसि आले। पालव नवे ॥१९०॥ जे परिणामा निघाले कोंभा। जे धैर्यमंडपाचे स्तंभा। जे आनंदसमुद्रीं कुंभा। चुबकळोनि भरिले ॥१९१॥ जयां भक्तीची येतुली प्राप्ती। जे कैवल्यातें परोंतें सर म्हणती। जयांचिये लीलेमार्जी नीति। जियाली दिसे ॥१९२॥ जे आघवांचि करणीं। लेइले शांतीची लेणीं। जयांचें चित्त गवसणी। व्यापका मज ॥१९३॥ ऐसे जे महानुभावा। जे दैविये प्रकृतीचें दैव। जे जाणोनियां सर्व। स्वरूप माझे ॥१९४॥ मग वाढतेनि प्रेमें। मातें भजती जे महात्मे। परि दुजेपण मनोधर्में। शिवतलें नाही ॥१९५॥ ऐसें मीच होऊनि पांडवा। करिती माझी सेवा। परि नवलावो तो सांगावा। असे आइक ॥१९६॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः। नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

तरी कीर्तनाचेनि नटनाचें। नाशिले व्यवसाय प्रायश्चित्तांचे। जे नामचि नाहीं पापाचें। ऐसें केलें ॥१७॥ यमदमा अवकळा आणिली। तीर्थे ठायावरुनि उठविली। यमलोकीं खुंटिली। राहाटी आघवी ॥१८॥ यमु म्हणे काय यमावें। दमु म्हणे कवणातें दमावें। तीर्थे म्हणती काय खावें। दोष ओखदासि नाहीं ॥१९॥ ऐसे माझेनि नामघोषें। नाहीं करिती विश्वाचीं दुःखें। अवघें जगचि महासुखें। दुमदुमित भरलें ॥२०॥ ते पाहांटेवीण पाहावित। अमृतेवीण जीववित। योगेवीण दावित। कैवल्य डोळां ॥१॥ परी रायारंका पाड धरूं। नेणती सानेयां थोरां कडसणी करूं। एकसरें आनंदाचें आवारु। होत जगा ॥२॥ कहीं एकाधेनि वैकुंठा जावें। तें तिहीं वैकुंठचि केलें आघवें। ऐसें नामघोषगौरवें। धवळलें विश्व ॥३॥ तेजें सूर्य तैसे सोज्वळा। परि तोहि अस्तवे हें किडाळा। चंद्र संपूर्ण एखादे वेळा। हे सदा पुरते ॥४॥ मेघ उदार परी वोसरे। म्हणऊनि उपमेसी न पुरे। हे निःशंकपणें सपांखरे। पंचानन ॥५॥ जयांचे वाचेपुढां भोजे। नाम नाचत असे माझें। जें जन्मसहस्रीं वोळगिजे। एकवेळ मुखासि यावया ॥६॥ तो मी वैकुंठीं नसें। एक वेळ भानुबिंबीही न दिसें। वरी योगियांचींही मानसें। उमरडोनि जाय ॥७॥ परी तयांपाशीं पांडवा। मी हारपला गिंवसावा। जेथ नामघोषु बरवा। करिती ते माझे ॥८॥ कैसे माझां गुणीं धाले। देशकाळातें विसरले। कीर्तनसुखें झाले। आपणपांचि ॥९॥ कृष्ण विष्णु हरि

गोविंद। या नामाचे निखळ प्रबंध। माजी आत्मचर्चा विशद। उदंड गाती ॥२१०॥ हें बहु असो यापरी। कीर्तित मातें अवधारीं। एक विचरती चराचरीं। पांडुकुमरा ॥११॥ मग आणिक ते अर्जुना। साविया बहुवा जतना। पंचप्राणा मना। पाढाऊ घेउनी ॥१२॥ बाहेरी यमनियमांची कांटी लाविली। आंतु वज्रासनाची पौळी पन्नासिली। वरी प्राणायामांचीं मांडिलीं। वाहातीं यंत्रें ॥१३॥ तेथ उल्हाटशक्तीचेनि उजिवडें। मनपवनाचेनि सुरवाडें। सतरावियेचें पाणियाडें। बळियाविलें ॥१४॥ तेव्हां प्रत्याहारें ख्याति केली। विकारांची संपिली बोहली। इंद्रियें बांधोनि आणिलीं। हृदयाआंतु ॥१५॥ तंव धारणावारु दाटिले। महाभूतांतें एकवटिलें। मग चतुरंग सैन्य निवटिलें। संकल्पाचें ॥१६॥ तयावरी जैत रे जैत। म्हणोनि ध्यानाचें निशाण वाजत। दिसे तन्मयाचें झळकत। एकछत्र ॥१७॥ पार्टीं समाधिश्रियेचा अशेखा। आत्मानुभवराज्यसुखा। पट्टाभिषेकु देखां। समरसें जाहला ॥१८॥ ऐसें हें गहना। अर्जुना माझें भजना। आतां ऐकें सांगेना। जे करिती एक ॥१९॥ तरी दोन्ही पालववेरी। जैसा एक तंतू अंबरीं। तैसा मीवांचूनि चराचरीं। जाणती ना ॥२०॥ आदि ब्रह्मा करुनी। शेवटीं मशक धरुनी। माजी समस्त हें जाणोनी। स्वरूप माझें ॥२१॥ मग वाड धाकुटें न म्हणती। सजीव निर्जीव नेणती। देखिलिये वस्तू उजू लुंठीती। मीचि म्हणोनि ॥२२॥ आपुलें उत्तमत्व नाठवे। पुढील योग्यायोग्य नेणवे। एकसरें व्यक्तिमात्राचेनि नावें। नमूचि आवडे ॥२३॥ जैसें उंचीं उदक पडिलें। तें तळवटवरी ये उगेलें। तैसें नमिजे भुतजात देखिलें। ऐसा स्वभावोचि तयांचा ॥२४॥ कां फळलिया तरुची

शाखा। सहजें भुमीसी उतरे देखा। तैसें जीवमात्रां अशेखां। खालावती ते ॥२५॥ अखंड अगर्वता
होऊनि असती। तयांतें विनयो हेचि संपत्ती। जे जयजयमंत्रें आर्पिती। माझांचि ठायीं ॥२६॥ नमितां
मानाभिमान गळाले। म्हणोनि अवचितें ते मीचि जहाले। ऐसे निरंतर मिसळले। उपासिती ॥२७॥
अर्जुना हे गरुवी भक्ती। सांगितली तुजप्रती। आतां ज्ञानयज्ञें यजिती। ते भक्त आइकें ॥२८॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥

परि भजन करिती हातवटी। तूं जाणत आहासि किरीटी। जे मागां झ्या गोष्टी। केलिया आम्हीं
॥२९॥ तंव आथि जी अर्जुन म्हणे। तें दैविकिया प्रसादाचें करणें। तरि काय अमृताचें आरोगणें। पुरे
म्हणवे ॥२३०॥ या बोला अनंतें। लागटा देखिलें तयातें। कीं सुखावलेनि चित्तें। डोलतु असे ॥३१॥
म्हणे भलें केलें पार्था। एन्हवीं हा अनवसरु सर्वथा। परि बोलवीतसे आस्था। तुझी मातें ॥३२॥ तंव
अर्जुन म्हणे हें कायी। चकोरेंवीण चांदिणेंचि नाहीं। जग निवविजे हा तयाचां ठायीं। स्वभावो कीं जी
॥३३॥ येरें चकोरें तियें आपुलिये चाडे। चांचू करिती चंद्राकडे। तेविं आम्ही विनवूं तें थोकडे। देवो
कृपासिंधु ॥३४॥ जी मेघ आपुलिये प्रौढी। जगाची आर्ति दवडी। वांचूनि चातकाची ताहान केवढी।
तो वर्षावो पाहुनी ॥३५॥ परि चुळा एकाचिया चाडे। जेविं गंगेतेंचि ठाकावें पडे। तेंविं आर्त बहु कां
थोडें। तरि सांगावें देवा ॥३६॥ तेथें देवें म्हणितलें राहें। जो संतोषु आम्हां जाहला आहे। तयावरी

स्तुति साहे। ऐसें उरलें नाहीं ॥३७॥ पें परिसतु आहासि निकियापरी। तेंचि वक्तृत्वा वन्हाडीक
करी। ऐसें पुरस्करोनि श्रीहरी। आदरिलें बोलों ॥३८॥ तरी ज्ञानयज्ञु तो एवरूप। तेथ आदिसंकल्पु
हा यूप। महाभूतें मंडपु। भेदु तो पशु ॥३९॥ मग पांचांचे जे विशेष गुण। अथवा इंद्रियें आणि प्राण।
हेचि यज्ञोपचारभरणा। अज्ञान घृत ॥२४०॥ तेथ मनबुद्धीचिया कुंडा। आंतु ज्ञानान्नि धडफुडा।
साम्य तेचि सुहाडा। वेदि जाणें ॥४१॥ सविवेकमतिपाटवा। तेचि मंत्रविद्यागौरवा। शांति सुकूस्त्रुवा।
जीव यज्वा ॥४२॥ तो प्रतीतीचेनि पात्रें। विवेकमहामंत्रें। ज्ञानाग्निहोत्रें। भेदु नाशी ॥४३॥ तेथ
अज्ञान सरोनि जाये। आणि यजिता यजन हें ठाये। आत्मसमरसीं न्हाये। अवभृथीं जेव्हां ॥४४॥
तेव्हां भूतें विषय करणें। हें वेगळालें कांहीं न म्हणे। आघवें एकचि ऐसें जाणे। आत्मबुद्धि ॥४५॥ जैसा
चेइला तो अर्जुना। म्हणे स्वप्नींची हें विचित्र सेना। मीचि जाहालों होतों ना। निद्रावशें ॥४६॥ आतां
सेना ते सेना नव्हे। हें मीच एक आघवें। ऐसें एकत्वे मानवे। विश्व तया ॥४७॥ मग तो जीवु हे भाष
सरे। आब्रह्म परमात्मबोधें भरे। ऐसे भजती ज्ञानाध्वरें। एकत्वे येणें ॥४८॥ अथवा अनादि हें अनेक।
जें आनासारिखें एका एका। आणि नामरूपादिका। तेंही विषम ॥४९॥ म्हणोनि विश्व भिन्ना। परि न भेदे
तयांचें ज्ञान। जैसे अवयव तरी आन आन। परि एकेचि देहींचे ॥२५०॥ कां शाखा सानिया थोरा।
परि आहाति एकाचिये तरुवरा। बहु रश्मि परि दिनकरा। एकाचे जेवीं ॥५१॥ तेविं नानाविधा
व्यक्ती। आनानें नामें आनानी वृत्ती। ऐसें जाणती भेदलां भूतीं। अभेदा मातें ॥५२॥ येणें वेगळालेपणें

पांडवा। करिती ज्ञानयज्ञु बरवा। जे न भेदतीं जाणिवा। जाणते म्हणउनी ॥५३॥ ना तरी जेधवां
 जिये ठायीं। देखती कां जें जें कांहीं। तें मीवांचूनि नाहीं। ऐसाचि बोधु ॥५४॥ पाहें पां बुडबुडा जेउता
 जाये। तेउतें जळचि एक तया आहे। मग विरे अथवा राहे। तन्ही जळाचिमाजि ॥५५॥ कां पवनें
 परमाणु उचलले। ते पृथ्वीपणावेगळे नाहीं गेले। आणि माघौतें जरी पडले। तरी पृथ्वीचिवरी ॥५६॥
 तैसें भलतेथ भलतेणें भावें। भलतेंही न हो अथवा होआवें। परि तें मी ऐसें आघवें। होऊनि ठेलें
 ॥५७॥ अगा हे जेव्हडी माझी व्याप्ति। तेव्हडीचि तयांचि प्रतीति। ऐसे बहुधाकारीं वर्तती। बहुचि
 होउनि ॥५८॥ हें भानुबिंब आवडेतया। सन्मुख जैसें धनंजया। तैसें ते विश्वा या। समोर सदा ॥५९॥
 अगा तयांचिया ज्ञाना। पाठीपोट नाहीं अर्जुना। वायु जैसा गगना। सर्वांगीं असे ॥६०॥ तैसा मी
 जेतुला आघवा। तेंचि तुक तयांचिया सद्भावा। तरी न करितां पांडवा। भजन जहालें ॥६१॥ एन्हीवीं
 तरी सकळ मीचि आहें। तरी कवणीं कें उपासिला नोहें। एथ एकें जाणणेनवीण ठाये। अप्राप्तासी
 ॥६२॥ परि तें असो येणें उचितें। ज्ञानयज्ञें यजितसांते। उपासिती मातें। ते सांगितले ॥६३॥
 अखंड सकळ हें सकळां मुखीं। सहज अर्पत असे मज एकीं। की नेणणेयासाठीं मूर्खीं। न पविजेचि
 मातें ॥६४॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्। मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

तोचि जाणिवेचा उदयो जरी होये। तरी मुदल वेदु मीचि आहें। आणि तो विधानातें जया विये।
 तो क्रतुही मीचि ॥६५॥ मग तया कर्मापासूनि बरवा। जो सांगोपांगु आघवा। यज्ञु प्रगटे पांडवा। तोही
 मी गा ॥६६॥ स्वाहा मी स्वधा। सोमादि औषधी विविधा। आज्य मी समिधा। मंत्रु मी हवि ॥६७॥
 होता मी हवन कीजे। तेथ आग्नि तो स्वरूप माझें। आणि हुतक वस्तू जें जें। तेही मीचि ॥६८॥

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः। वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्सामयजुरेव च ॥१७॥

पै जयाचेनि अंगसंगें। इये प्रकृतीस्तव अष्टांगे। जन्म पाविजत असे जगें। तो पिता मी गा ॥६९॥
 अर्धनारीनटेश्वरीं। जो पुरुष तोचि नारी। तेविं मी चराचरीं। माताही होय ॥७०॥ आणि जाहालें जग
 जेथ राहे। जेणें जित वाढत आहे। तें मीचि वाचूनि नोहे। आन निरुतें ॥७१॥ इयें प्रकृतिपुरुषें
 दोन्ही। उपजलीं जयाचिया अमनमनीं। तो पितामह त्रिभुवनीं। विश्वाचा मी ॥७२॥ आणि आघवेयां
 जाणणेयांचिया वाटा। जया गांवा येती गा सुभटा। जे वेदांचियां चोहटां। वेद्य जें म्हणिजे ॥७३॥ जेथ
 नाना मतां बुझावणी जाहाली। एकमेकां शास्त्रांची अनोळखी फिटली। चुकलीं ज्ञानें जेथ मिळों
 आलीं। जें पवित्र म्हणिजे ॥७४॥ पै ब्रह्मबीजा जाहला अंकुरु। घोषध्वनीनादाकारु। तयांचें गा भुवन
 जो ॐकारु। तोही मी गा ॥७५॥ जया ॐकाराचिये कुशी। अक्षरें होती अउमकारेंसीं। जियें उपजत
 वेदेंसीं। उठलीं तिन्हीं ॥७६॥ म्हणोनि ऋग्यजुःसामु। हे तिन्ही म्हणे मी आत्मरामु। एवं मीचि
 कुलक्रमु। शब्दब्रह्माचा ॥७७॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥

हें चराचर आघवें। जिये प्रकृती आंत सांठवे। ते शिणली जेथ विसवे। ते परमगती मी ॥७८॥
आणि जयाचेनि प्रकृति जिये। जेणें आर्धिष्ठिली विश्व विये। जो येऊनि प्रकृती इये। गुणातें भोगी
॥७९॥ तो विश्वश्रियेचा भर्ता। मीचि गा पंडुसुता। मी गोसावी समस्ता। त्रैलोक्याचा ॥८०॥
आकाशें सर्वत्र वसावें। वायूनें नावभरी उगें नसावें। पावकें दहावें। वर्षावें जळें ॥८१॥ पर्वतीं बैसका
न संडावी। समुद्रीं रेखा नोलांडावी। पृथ्वीया भूतें वाहावीं। हे आज्ञा माझी ॥८२॥ म्यां बोलविल्या
वेदु बोले। म्यां चालविल्या सूर्यु चाले। म्यां हालविल्या प्राणु हाले। जो जगातें चाळिता ॥८३॥
मियांचि नियमिलासांता। काळु ग्रासितसे भूतां। इयें म्हणियागतें पांडुसुता। सकळें जयाचीं ॥८४॥
ऐसा जो समर्थु। तो मी जगाचा नाथु। आणि गगनाऐसा साक्षिभूतु। तोहि मीचि ॥८५॥ इहीं नामरूपीं
आघवा। जो भरला असे पांडवा। आणि नामरूपांहि वोल्हावा। आपणचि जो ॥८६॥ जैसे जळाचे
कल्लोळ। आणि कल्लोळीं आथी जळ। ऐसेनि वसवीतसे सकळ। तो निवासु मी ॥८७॥ जो मज
होय अनन्य शरण। त्याचें निवारीं मी जन्म मरण। यालागीं शरणागता शरण्य। मीचि एकु ॥८८॥
मीचि एक अनेकपणें। वेगळालेनि प्रकृतीगुणें। जीत जगाचेनि प्राणें। वर्तत असे ॥८९॥ जैसा समुद्र
थिल्लर न म्हणतां। भलतेथ बिंबे सविता। तैसा ब्रह्मादि सर्वा भूतां। सुहृद तो मी ॥९०॥ मीचि गा

पांडवा। या त्रिभुवनासि वोलावा। सृष्टिक्षयप्रभावा। मूळ तें मी ॥९१॥ बीज शाखातें प्रसवे। मग तें
रुखपण बीजीं सामावे। तैसें संकल्पें होय आघवें। पाठीं संकल्पीं मिळे ॥९२॥ ऐसें जगाचें बीज जो
संकल्पु। अव्यक्त वासनारूपु। तया कल्पांतीं जेथ निक्षेपु। होय तें मी ॥९३॥ इयें नामरूपें लोटती।
वर्णव्यक्ती आटती। जातीचें भेद फिटती। जें आकाश नाही ॥९४॥ तें संकल्पु वासनारूपं स्कारा।
माघौतें रचावया आकार। जेथ राहोनि असती अमर। तें निधान मी ॥९५॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृणहाम्युत्सृजामि च। अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥९६॥

मी सूर्याचेनि वेषें। तपें तें हें शोषे। पाठीं इंद्र होऊनि वर्षें। तें पुढती भरे ॥९६॥ आग्नि काष्ठें
खाये। तें काष्ठचि आग्नि होये। तेवि मरतें मारितें पाहें। स्वरूप माझें ॥९७॥ यालागीं मृत्यूचां भागीं
जें जें। तेंही पै रूप माझें। आणि न मरतें तंव सहजें। आर्विनाश मी ॥९८॥ आतां बहु बोलोनि
सांगावें। तें एकिहेळां घे पां आघवें। तरी सतासतही जाणावें। मीचि पै गा ॥९९॥ म्हणोनि अर्जुना
मी नसें। ऐसा कवणु ठाव असे। परि प्राणियांचें दैव कैसे। जे न देखती मातें ॥१००॥ तरंग
पाणियेंवीण सुकती। रश्मि वातीवीण न देखती। तैसे मीचि ते मी नव्हती। विस्मो देखें ॥१०१॥ हें
आंतबाहेर मियां कोंदलें। जग निखिल माझेंचि वोतिलें। कीं कैसें कर्म तयां आलें। जे मीचि नाहीं
म्हणती ॥१०२॥ परि अमृतकुहां पडिजे। कां आपणयातें कडिये काढिजे। ऐसें आथी काय कीजे।
अप्राप्तासि ॥१०३॥ ग्रासा एका अन्नासाठीं। अंधु धांवताहे किरीटी। आडळला चिंतामणि पायें लोटी।

आंधळेपणें ॥४॥ तैसें ज्ञान जें सांडूनि जाये। तें ऐसी हे दशा आहे। म्हणोनि कीजे तें केलें नोहे।
ज्ञानेवीण ॥५॥ आंधळेया गरुडाचे पांख आहाती। ते कवणा उपेगा जाती। तैसें सत्कर्माचे उपखे
ठाती। ज्ञानेवीण ॥६॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥२०॥

देख पां गा किरीटी। आश्रमधर्माचिया राहाटी। विधिमार्गा कसवटी। जे आपणचि होती ॥७॥
यजन करितां कौतुकें। तिहीं वेदांचा माथा तुके। क्रिया फळेंसि उभी ठाके। पुढां जयां ॥८॥ ऐसे
दीक्षित जे सोमपा। जे आपणचि यज्ञाचें स्वरूपा तींहीं तया पुण्याचेनि नांवें पापा जोडिलें देखें ॥९॥
जे श्रुतित्रयातें जाणोनि। शतवरी यज्ञ करुनि। यजिलिया मातें चुकोनि। स्वर्गु वरिती ॥३१०॥ जैसें
कल्पतरुतळवटीं। बैसोनि झोळिये पाडी गांठी। मग निदैव निघे किरीटी। दैन्यचि करूं ॥११॥ तैसे
शतक्रतू यजिलें मातें। कीं ईप्सिताति स्वर्गसुखांतें। आतां पुण्य कीं हें निरुतें। पाप नोहे ॥१२॥
म्हणोनि मजवीण पाविजे स्वर्गु। तो अज्ञानाचा पुण्यमार्गु। ज्ञानिये तयातें उपसर्गु। हानि म्हणती
॥१३॥ एन्हवीं तरी नरकीचें दुःखा पावोनि स्वर्गा नाम कीं सुखा वांचूनि नित्यानंद गा निर्दोष। तें
स्वरूप माझें ॥१४॥ मज येतां पै सुभटा। या द्विविधा गा अव्हांटा। स्वर्गु नरकु या वाटा। चोरांचिया

॥१५॥ स्वर्गा पुण्यात्मकें पापें येईजे। पापात्मकें पापें नरका जाइजे। मग मातें जेणें पाविजे। तें शुद्ध
पुण्य ॥१६॥ आणि मजचिमार्जीं असतां। जेणें मी दूरी होय पांडुसुता। तें पुण्य ऐसें म्हणतां। जीभ
न तुटे काई ॥१७॥ परि हें असो आतां प्रस्तुता। ऐकें यापरी ते दीक्षिता यजुनि मातें याचिता।
स्वर्गभोगु ॥१८॥ मग मी न पाविजे ऐसें। जें पापरूप पुण्य असे। तेणें लाधलेनि सौरसें। स्वर्गा येती
॥१९॥ जेथ अमरत्व हेंचि सिंहासना। ऐरावतासारिखें वाहना। राजधानीभुवना। अमरावती ॥३२०॥
जेथ महासिद्धींची भांडारें। अमृताचीं कोठारें। जियें गांवीं खिल्लारें। कामधेनूंचीं ॥२१॥ जेथ वोळगे
देव पाइका। सेंघ चिंतामणीचिया भूमिका। विनोदवनवाटिका। सुरतरुंचिया ॥२२॥ गंधर्वगान गाणीं।
जेथ रंभेऐशिया नाचणी। उर्वशी मुख्य विलासिनी। अंतौरिया ॥२३॥ मदन वोळगे शेजारे। जेथ चंद्र
शिंपे सांबरें। पवना ऐसें म्हणियारें। धांवणें जेथ ॥२४॥ पै बृहस्पति आपण। ऐसे स्वस्तीश्रियेचे
ब्राह्मण। ताटियेचे सुरगण। विकार जेथें ॥२५॥ लोकपाळरांगेचे। राउत जिये पदीचे। उच्चैःश्रवा
खांचे। खोलणिये ॥२६॥ हें बहु असो जे ऐसे। भोग इंद्रसुखाहिसरिसे। ते भोगिजती जंव असे।
पुण्यलेशु ॥२७॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

मग तया पुण्याची पाउटी सरे। सर्वेचि इंद्रपणाची उटी उतरे। आणि येऊं लागती माघारें।

मृत्युलोका ॥२८॥ जैसा वेश्याभोगीं कवडा वेंचे। मग दारही चेपूं न ये तियेचें। तैसें लाजिरवाणें
दीक्षितांचें। काय सांगों ॥२९॥ एवं थितिया मातें चुकले। जीहीं पुण्यें स्वर्ग कामिले। तयां अमरपण
तें वावों जालें। आतां मृत्युलोकु ॥३३०॥ मातेचिया उदरकुहरीं। पचूनि विष्ठेचां दाथरीं। उकडूनि
नवमासवरी। जन्मजन्मोनि मरती ॥३१॥ अगा स्वप्नीं निधान फावे। परि चेइलिया हारपे आघवें।
तैसें स्वर्गसुख जाणावें। वेदज्ञाचें ॥३२॥ अर्जुना वेदु जन्ही जाहला। तरी मातें नेणतां वायां गेला।
कणु सांडूनि उपणिला। कोंडा जैसा ॥३३॥ म्हणऊनि मज एकेंविण। हे त्रयीधर्म अकारण। आतां
मातें जाणोनि कांहीं नेण। तूं सुखिया होसी ॥३४॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

पैं सर्वभावेसी उखितें। जे वोपिले मज चितें। जैसा गर्भगोळु उद्यमातें। कोणाही नेणे ॥३५॥
तैसा मीवाचूनि कांही। आणीक गोमटेंचि नाहीं। मजचि नाम पाहीं। जिणेया ठेविलें ॥३६॥ ऐसे
अनन्यगतिकें चितें। चिंतितसांते मातें। जे उपासिती तयांतें। मीचि सेवीं ॥३७॥ ते एकवटूनि जिये
क्षणीं। अनुसरले गा माझिये वाहणी। तेव्हांचि तयांची चिंतवणी। मजचि पडली ॥३८॥ मग तींहीं जें
जें करावें। तें मजचि पडिलें आघवें। जैशी अजातपक्षांचेनि जीवें। पक्षिणी जिये ॥३९॥ आपुली
तहानभूक नेणे। तान्हया निकें तें माउलीसीचि करणें। तैसे अनुसरले जे मज प्राणें। तयांचेन

काइसेनिहि न लजें मी ॥३४०॥ तया माझिया सायुज्याची चाड। तरि तेंचि पुरवीं कोडा कां सेवा
म्हणती तरी आड। प्रेम सुयें ॥४१॥ ऐसा मनीं जो जो धरिती भावो। तो तो पुढां पुढां लागें तयां देवों।
आणि दिधलियाचा निर्वाहो। तोही मीचि करीं ॥४२॥ हा योगक्षेमु आघवा। तयांचा मजचि पडिला
पांडवा। जयांचियां सर्वभावां। आश्रयो मी ॥४३॥

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः। तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥

आतां आणिकही संप्रदायें। परी मातें नेणती समवायें। जे आग्नि-इंद्र-सूर्य-सोमाये। म्हणऊनि
यजिती ॥४४॥ तेंही कीर मातेंचि होये। कां जे हें आघवें मीचि आहें। परि ते भजती उजरी नव्हे।
विषम पडे ॥४५॥ पाहें पां शाखा पल्लव वृक्षाचे। हे काय नव्हती एकाचि बीजाचे। परी पाणी घेणें
मुळाचें। तें मुळींचि घापे ॥४६॥ कां दहाहीं इंद्रियें आहाती। इयें जरी एकेचि देहींचीं होती। आणि इहीं
सेविले विषयो जाती। एकाचि ठाया ॥४७॥ तरि करोनि रससोय बरवी। कानीं केविं भरावी। फुलें
आणोनि बांधावीं। डोळां केविं ॥४८॥ तेथ रसु तो मुखेंचि सेवावा। परिमळु तो घ्राणेंचि घ्यावा। तैसा
मी तो यजावा। मीचि म्हणोनि ॥४९॥ येर मातें नेणोनि भजना। तें वायांचि गा आनंआन। म्हणोनि
कर्माचे डोळे ज्ञान। तें निर्दोष होआवें ॥३५०॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च। न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥२४॥

एन्हवीं पाहें पां पंडुसुता। या यज्ञोपहारां समस्तां। मीवांचूनि भोक्ता। कवणु आहे ॥५१॥ मी

सकळां यज्ञांचा आदि। आणि यजना या मीचि अवधि। कीं मातें चुकोनि दुर्बुद्धि। देवां भजले ॥५२॥
गंगेचें उदक गंगे जैसें। आर्पिजे देवपितरोद्देशें। माझे मज देती तैसें। परि आनानीं भावीं ॥५३॥
म्हणऊनि ते पार्था। मातें न पवतीचि सर्वथा। मग मनीं वाहिली जे आस्था। तेथ आले ॥५४॥

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन् यान्ति पितृव्रताः।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥२५॥

मनें वाचा करणीं। जयांचीं भजनें देवांचिया वाहणी। ते शरीर जातियेक्षणीं। देवचि जाले ॥५५॥
अथवा पितरांचीं व्रतें। वाहती जयांचीं चित्तें। जीवित सरलिया तयांतें। पितृत्व वरी ॥५६॥ कां
क्षुद्रदेवतादि भूतें। तियेंचि जयांचीं परमदैवतें। जीहीं आर्भिचारिकीं तयांतें। उपासिलें ॥५७॥ तयां
देहाची जवनिक फिटली। आणि भूतत्वाची प्राप्ति जाहली। एवं संकल्पवशें फळलीं। कर्में तयां ॥५८॥
मग मीचि डोळां देखिला। जीहीं कानीं मीचि ऐकिला। मनीं मी भाविला। वानिला वाचा ॥५९॥
सर्वांगीं सर्वाठायीं। मीचि नमस्कारिला जिहीं। दानपुण्यादिकें जें कांहीं। तें माझियाचि मोहरा ॥६०॥
जिहीं मातेंचि अध्ययन केलें। जे आंतबाहेरि मियांचि धाले। जयांचे जीवित्व जोडलें। मजचिलागीं
॥६१॥ जे अहंकारु वाहत आंगीं। आम्ही हरीचे भूषावयालागीं। जे लोभिये एकचि जगीं। माझेनि
लोभें ॥६२॥ जे माझेनि कामें सकाम। जे माझेनि प्रेमें सप्रेम। जे माझिया भूली सभ्रम। नेणती लोक

॥६३॥ जयांचीं जाणती मजचि शास्त्रें। मी जोडें जयांचेनि मंत्रें। ऐसे जे चेष्टामात्रें। भजले मज
॥६४॥ ते मरणाएलीचकडे। मज मिळोनि गेले फुडे। मग मरणीं आणिकीकडे। जातील केविं ॥६५॥
म्हणोनि मद्याजी जे जाहाले। ते माझिया सायुज्या आले। जिहीं उपचारमिषें दिधलें। आपणपें मज
॥६६॥ पै अर्जुना माझां ठायीं। आपणपेनवीण सौरसु नाहीं। मी उपचारीं कवणाही। नाकळें गा
॥६७॥ एथ जाणीव करी तोचि नेणे। आथिलेंपण मिरवी तेंचि उणें। आम्ही जाहलों ऐसें जो म्हणे।
तो कांहींचि नव्हे ॥६८॥ अथवा यज्ञदानादि किरीटी। कां तपें हन जे हुटहुटी। ते तृणा एकासाठीं।
न सरे एथ ॥६९॥ पाहें पां जाणिवेचेनि बळें। कोण्ही वेदापासूनि असे आगळें। कीं शेषाहूनि तोंडागळें।
बोलकें आथी ॥७०॥ तोही आंथरुणातळवटी दडे। येरु नेति नेति म्हणोनि बहुडे। एथ सनकादिक
वेडे। पिसे जाहले ॥७१॥ करितां तापसांची कडसणी। कवणु जवळां ठेविजैल शूळपाणी। तोहि
आर्भिमानु सांडूनि पायवणी। माथां वाहे ॥७२॥ नातरी आथिलेपणें सरिसी। कवणी आहे लक्ष्मियेऐसी।
श्रियेसारिखिया दासी। घरीं जियेतें ॥७३॥ तियां खेळतां करिती घरकुली। तयां नामें अमरपुरें जरि
ठेविलीं। तरि न होती काय बाहुलीं। इंद्रादिक तयांचीं ॥७४॥ तियां नावडोनि जेव्हां मोडती। तेव्हां
महेंद्राचे रंक होती। तियां झाडां येउते जयां पाहती। ते कल्पवृक्ष ॥७५॥ ऐसें जियेचियां जवळिकां।
सामर्थ्य घरींचियां पाडकां। ते लक्ष्मी मुख्यनायका। न मनेचि एथ ॥७६॥ मग सर्वस्वें करुनि सेवा।
आर्भिमानु सांडूनि पांडवा। ते पाय धुवावयाचिया दैवा। पात्र जाहाली ॥७७॥ म्हणोनि थोरपण

पन्हांचि सांडिजे। व्युत्पत्ति आघवी विसरिजे। जें जगा धाकुटें होइजे। तें जवळीक माझी ॥७८॥ अगा
सहस्रकिरणाचिये दिठी। पुढा चंद्रुही लोपे किरीटी। तेथ खद्योत का हुटहुटी। आपुलेनि तेजें ॥७९॥
तैसें लक्ष्मियेचें थोरपण न सरे। जेथ शंभूचेंही तप न पुरे। तेथ येर प्राकृत हेंदरें। केविं जाणों लाहे
॥३८०॥ यालागीं शरीरसांडोवा कीजे। सकळगुणांचें लोण उतरिजे। संपत्तिमदु सांडिजे। कुरवंडी
करुनी ॥८१॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

मग निस्सीमभावउल्हासें। मज अर्पावयाचेनि मिसें। फळ आवडे तैसें। भलतयाचें हो ॥८२॥
भक्तु माझियाकडे दावी। आणि मी दोन्ही हात वोडवीं। मग देतुं न फेडितां सेवीं। आदरेंशी ॥८३॥
पें गा भक्तीचेनि नावें। फूल एक मज द्यावें। तें लेखें तरि म्यां तुरंबावें। परि मुखींचि घालीं ॥८४॥ हें
असो कायसीं फुलें। पानचि एक आवडे तें जाहलें। तें साजुकही न हो सुकलें। भलतैसें ॥८५॥ परि
सर्वभावें भरलें देखें। आणि भुकेला अमृतें तोखे। तैसें पत्रचि परि तेणें सुखें। आरोगूं लागें ॥८६॥
अथवा ऐसेंही एक घडे। जे पालाही परी न जोडे। तरि उदकाचें तंव सांकडें। नव्हेल कीं ॥८७॥ तें
भलतेथ निमोलें। न जोडितां आहे जोडलें। तेंचि सर्वस्व करुनि आर्पिलें। जेणें मज ॥८८॥ तेणें
वैकुंठापासोनि विशाळें। मजलागीं केलीं राऊळें। कौस्तुभाहोनि निर्मळें। लेणीं दिधलीं ॥८९॥ दूधाचीं

शेजारें। क्षीराब्धीऐसीं मनोहरें। मजलागीं अपारें। सृजिलीं तेणें ॥३९०॥ कर्पूर चंदन अगरु। ऐसेया
सुगंधाचा महामेरु। मज हातीं लाविला दिनकरु। दीपमाळे ॥९१॥ गरुडासारिखीं वाहनें। मज
सुरतरुंचीं उद्यानें। कामधेनूंचीं गोधनें। आर्पिलीं तेणें ॥९२॥ मज अमृताहूनि सुरसें। बोनीं वोगरिलीं
बहुवसें। ऐसा भक्तांचेनि उदकलेशें। परितोषें गा ॥९३॥ हें सांगावें काय किरीटी। तुम्हींचि देखिलें
आपुलिया दिठी। मी सुदामयाचिया सोडीं गांठी। पव्हयालागीं ॥९४॥ पें भक्ति एकी मी जाणें। तेथ
सानें थोर न म्हणें। आम्ही भावाचे पाहुणे। भलतेया ॥९५॥ येर पत्र पुष्प फळा तें भजावया मिस
केवळा वांचूनि आमुचा लाग निष्कळा। भक्तितत्त्व ॥९६॥ म्हणोनि अर्जुना अवधारीं। तूं बुद्धि एकी
सोपारी करीं। तरी सहजें आपुलिया मनोमंदिरीं। न विसंबें मातें ॥९७॥

यत् करोषि यदश्नासि यज् जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

जे जे कांहीं व्यापार करिसी। कां भोग हन भोगिसी। अथवा यज्ञीं यजसी। नानाविधीं ॥९८॥
नातरी पात्रविशेषें दानें। कां सेवकां देसी जीवनें। तपादि साधनें। व्रतें करिसी ॥९९॥ तें क्रियाजात
आघवें। जें जैसें निपजेल स्वभावें। तें भावना करोनि करावें। माझिया मोहरा ॥४००॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्षयसे कर्मबन्धनैः। संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

परि सर्वथा आपुलां जीवीं। केलियाची शंका कांहींचि नुरवीं। ऐसीं धुवोनि कर्म द्यावीं। माझियां
हातीं ॥१॥ मग आग्निकुंडी बीजें घातलीं। तियें अंकुरदशे जेविं मुकलीं। तेवि न फळतीचि मज

आर्पिलीं। शुभाशुभं ॥२॥ अगा कर्म जें उरावें। तें तिहीं सुखदुःखीं फळावें। आणि तयातें भोगावया
यावें। देहा एका ॥३॥ तें उगाणिलें मज कर्म। तेव्हांचि पुसिलें मरण जन्मा जन्मासवें श्रमा वरचिलही
गेले ॥४॥ म्हणऊनि अर्जुना यापरी। पाहेचा वेळु नव्हेल भारी। हे संन्यासयुक्ति सोपारी। दिधली
तुज ॥५॥ या देहाचिया बांदोडी न पडिजे। सुखदुःखाचिया सागरीं न बुडिजे। सुखें सुखरूपा घडिजे।
माझियाचि अंगा ॥६॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

तो मी पुससी कैसा। तरि जो सर्वभूतीं सदा सरिसा। जेथ आपपरु ऐसा। भागु नाही ॥७॥ जे
ऐसिया मातें जाणोनि। अहंकाराचा कुरुठा मोडोनि। जे जीवें कर्म करुनि। भजती मातें ॥८॥ ते
वर्तत दिसती देहीं। परि ते देहीं ना माझां ठायीं। आणि मी तयांचां हृदयीं। समग्र असें ॥९॥ सविस्तर
वटत्व जैसें। बीजकणिकेमार्जीं असे। आणि बीजकणु वसे। वर्तींजेवीं ॥१०॥ तेवीं आम्हां तयां
परस्परें। बाहेरी नामाचींचि अंतरे। वांचुनि आंतुवट वस्तुविचारें। मी तेचि ते ॥११॥ आतां जायांचें
लेणें। जैसें आंगावरी आहाचवाणें। तैसें देह धरणें। उदास तयांचें ॥१२॥ परिमळु निघालिया पवनापाठीं।
मागें वोस फूल राहे देठीं। तैसें आयुष्याचिये मुठी। केवळ देह ॥१३॥ येर अवष्टंभु जो आघवा। तो

आरूढोनि मझावा। मजचि आंतु पांडवा। पैठा जाहला ॥१४॥

आर्पि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥

ऐसें डभजतेनि प्रेमभावे। जयां शरीरही पाठीं न पवे। तेणें भलतया व्हावें। जातीचिया ॥१५॥
आणि आचरण पाहातां सुभटा। तो दुष्कृताचा कीर सेल वांटा। परि जीवित वेचिलें चोहटां। भक्तीचिया
कीं ॥१६॥ अगा अंतींचिया मती। साचपण पुढिले गती। म्हणोनि जीवित जेणें भक्ती। दिधलें शेखीं
॥१७॥ तो आधीं जरी अनाचारी। तरी सर्वोत्तमुचि अवधारीं। जैसा बुडाला महापूरीं। न मरतु
निघाला ॥१८॥ तयाचें जीवित ऐलथडिये आलें। म्हणोनि बुडालेपण जेवीं वायां गेलें। तेवीं नुरेचि
पाप केलें। शेवटलिये भक्ती ॥१९॥ यालागीं दुष्कृती जन्ही जाहाला। तरि अनुतापतीर्थी न्हाला।
न्हाऊनि मजआंतु आला। सर्वभावे ॥२०॥ तरि आतां पवित्र तयाचेंचि कुळ। आभिजात्य तेंचि
निर्मळ। जन्मलेया फळ। तयासीच जोडलें ॥२१॥ तो सकळही पढिन्नला। तपें तोचि तपिन्नला।
अष्टांग अभ्यासिला। योगु तेणें ॥२२॥ हें असो बहुत पार्था। तो उतरला कर्म सर्वथा। जयाची अखंड
गा आस्था। मजचिलागीं ॥२३॥ अवघिया मनोबुद्धीचिया राहटी। भरोनि एकनिष्ठेचिया पेटी। जेणें
मजमार्जीं किरीटी। निक्षेपिली ॥२४॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति। कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥

तो आतां अवसरें मजसारिखा होइला। ऐसाही भाव तुज जाईला। हां गा अमृताआंत राहीला। तया

* मरण कैचें ॥२५॥ पै सूर्य जो वेळु नुदैजे। तया वेळा कीं रात्रि म्हणिजे। तेवीं माझिये भक्तीविण जें *
 * कीजे। तें महापाप नोहे ॥२६॥ म्हणोनि तयाचिया चित्ता। माझी जवळिक पांडुसुता। तेव्हांचि तो *
 * तत्त्वता। स्वरूप माझें ॥२७॥ जैसा दीपें दीपु लाविजे। तेथ आदील कोण हें नोळखिजे। तैसा सर्वस्वें *
 * जो मज भजे। तो मी होऊनि ठाके ॥२८॥ मग माझी नित्य शांती। तया दशा तेचि कांती। किंबहुना *
 * जिती। माझेनि जीवें ॥२९॥ एथ पार्था पुढतपुढती। तेंचि तें सांगों किती। जरी मियां चाड तरी *
 * भक्ती। न विसंबिजे गा ॥३०॥ अगा कुळाचिया चोखटपणा नलगा। आभिजात्य झणीं श्लाघा। *
 * व्युत्पत्तीचा वाउगा। सोसु कां वहावा ॥३१॥ कां रूपें वयसा माजा। आथिलेपणें कां गाजा। एक भाव *
 * नाही माझा। तरी पाल्हाळ तें ॥३२॥ कणेंविण सोपटें। कणसें लागलीं आथी एक दाटें। काय करावें *
 * गोमटें। वोस नगर ॥३३॥ नातरी सरोवर आटलें। रानीं दुःखिया दुःखी भेटलें। कां वांझ फुलीं फुललें। *
 * झाड जैसें ॥३४॥ तैसें सकळ तें वैभवा। अथवा कुळजातिगौरवा। जैसें शरीर आहे सावेवा। परि *
 * जीवचि नाही ॥३५॥ तैसे माझिये भक्तीविण। जळो तें जियालेंपण। अगा पृथ्वीवरी पाषाण। नसती *
 * काई ॥३६॥ पै हिंवराची दाट साउली। सज्जनीं जैसी वाळिली। तैसीं पुण्यें डावलूनि गेलीं। अभक्तांतें *
 * ॥३७॥ निंब निंबोळियां मोडोनि आला। तरी तो काउळियांसीचि सुकाळु जाहला। तैसा भक्तीहीनु *
 * वाढिल्ला। दोषांचिलागीं ॥३८॥ कां षड्रस खापरीं वाढिले। वाढूनि चोहटां रात्रीं सांडिले। ते सुण्यांचेचि *

* ऐसे झाले। जियापरी ॥३९॥ तैसें भक्तीहीनाचें जिणें। जो स्वप्नींहि परि सुकृत नेणे। तेणे *
 * संसारदुःखासि आवंतणें। वोगरिलें गा ॥४०॥

* मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये ऽ पि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥३२॥

* म्हणोनि कुळ उत्तम नोहावें। जाती अंत्याहि व्हावें। वरि देहाचेनि नावें। पशूचेंही लाभो ॥४१॥ *
 * पाहें पां सावजें हातिरुं धरिलें। तेणें तया काकुळती मातें स्मरिलें। कीं तयाचें पशुत्व वावो जाहलें। *
 * पातलिया मातें ॥४२॥ अगा नावें घेतां वोखटीं। जे आघवेया अधमांचिये शेवटीं। तिये पापयोनीही *
 * किरीटी। जन्मले जे ॥४३॥ ते पापयोनि मूढा मूर्ख ऐसे जे दगडा। परि माझां ठायीं दृढा सर्वभावें *
 * ॥४४॥ जयांचिये वाचे माझे आलाप। दृष्टि भोगी माझेचि रूप। जयांचें मन संकल्प। माझाचि वाहे *
 * ॥४५॥ माझिया कीर्तीविण। जयांचे रिते नाहीं श्रवण। जयां सर्वांगीं भूषण। माझी सेवा ॥४६॥ *
 * जयांचें ज्ञान विषो नेणे। जाणीव मजचि एकातें जाणे। जया ऐसें लाभे तरी जिणें। एन्हवीं मरण *
 * ॥४७॥ ऐसा आघवाचि परी पांडवा। जिहीं आपुलिया सर्वभावा। जियावयालागीं वोलावा। मीचि *
 * केला ॥४८॥ ते पापयोनीही होतु कां। ते श्रुताधीतही न होतु कां। परि मजसीं तुकितां तुका। तुटी *
 * नाही ॥४९॥ पाहें पां भक्तीचेनि आथिलेपणें। दैत्यीं देवां आणिलें उणें। माझें नृसिंहत्व लेणें। *
 * जयाचिये महिमे ॥४५०॥ तो प्रल्हादु गा मजसाठीं। घेतां बहुतें सदा किरीटी। कां जें मियां द्यावें ते *
 * गोष्टी। तयाचिया जोडे ॥५१॥ एन्हवीं दैत्यकुळ साचोकारें। परि इंद्रही सरी न लाहे उपरें। म्हणोनि *

* भक्ति गा एथ सरे। जाति अप्रमाण ॥५२॥ राजाज्ञेचीं अक्षरें आहाती। तियें चामा एका जया पडती। *
 * तया चामासाठीं जोडती। सकळ वस्तु ॥५३॥ वांचूनि सोनें रुपें प्रमाण नोहे। एथ राजाज्ञाचि समर्थ *
 * आहे। तेंचि चाम एक जें लाहे। तेणें विकती आघवीं ॥५४॥ तैसें उत्तमत्व तेंचि तरे। तेंचि सर्वज्ञता *
 * सरे। जें मनोबुद्धि भरे। माझेनि प्रेमें ॥५५॥ म्हणोनि कुळ जाति वर्ण। हें आघवेंचि गा अकारण। एथ *
 * अर्जुना माझेपण। सार्थक एक ॥५६॥ तेंचि भलतेणें भावें। मन मजआंतु येतें होआवें। आलें तरी *
 * आघवें। मागील वावो ॥५७॥ जैसे तंवचि वहाळ वोहळा। जंव न पवती गंगाजळ। मग होऊनि ठाकती *
 * केवळा गंगारूप ॥५८॥ कां खैर चंदन काष्ठें। हे विवंचना तंवचि घटे। जंव न घापती एकवटें। *
 * अग्नीमार्जी ॥५९॥ तैसे क्षत्री वैश्य स्त्रिया। कां शूद्र अंत्यादि झ्या। जाती तंवचि वेगळालिया। जंव *
 * न पवती मातें ॥६०॥ मग जाती व्यक्ती पडे बिंदुलें। जेव्हां भाव होती मज मीनले। जैसे लवणकण *
 * घातले। सागरामार्जी ॥६१॥ तंववरी नदानदीचीं नावें। तंवचि पूर्वपश्चिमेचे यावे। जंव न येती आघवे। *
 * समुद्रामार्जी ॥६२॥ हेंचि कवणें एकें मिसें। चित्त माझां ठायीं प्रवेशे। येतुलें हो मग आपैसें। मी होणें *
 * असे ॥६३॥ अगा वरी फोडावयाचि लागीं। लोहो मिळो कां परिसाचां आंगीं। कां जे मिळतिये प्रसंगीं। *
 * सोनेंचि होईल ॥६४॥ पाहें पां वालभाचेनि व्याजें। तिया वजांगनांचीं निजें। मज मीनलिया काय *
 * माझें। स्वरूप नव्हतीचि ॥६५॥ नातरी भयाचेनि मिसें। मातें न पविजेचि काय कसें। कीं अखंड *

* वैरवशें। चैद्यादिकीं ॥६६॥ अगा सोयरेपणेंचि पांडवा। माझें सायुज्य यादवां। कीं ममत्वे वसुदेवा। *
 * दिकां सकळां ॥६७॥ नारदा ध्रुवा अक्रूरा। शुका हन सनत्कुमारा। यां भक्ती मी धनुर्धरा। प्राप्य *
 * जैसा ॥६८॥ तैसाचि गोपीसि कामें। तया कंसा भयसंभ्रमें। येरा घातकेयां मनोधर्मे। शिशुपालादिकां *
 * ॥६९॥ अगा मी एकुलाणीचें खागें। मज येवों ये भलतेनि मार्गे। भक्ती कां विषयें विरागें। अथवा वैरें *
 * ॥७०॥ म्हणोनि पार्था पाहीं। प्रवेशावया माझां ठायीं। उपायांची नाहीं। केणि एथ ॥७१॥ आणि *
 * भलतिया जाती जन्मावें। मग भजिजे कां विरोधावें। परि भक्त कां वैरिया व्हावें। माझियाचि ॥७२॥ *
 * अगा कवणें एके बोलें। माझेपण जन्ही जाहालें। तरी मी होणें आलें। हाता निरुतें ॥७३॥ यापरी *
 * पापयोनीही अर्जुना। कां वैश्य शूद्र अंगना। मातें भजतां सदना। माझिया येती ॥७४॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा। आर्निर्त्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥

* मग वर्णामार्जी छत्रचामरा। स्वर्ग जयांचें अग्रहार। मंत्रविद्येसि माहेरा। ब्राह्मण जे ॥७५॥ जेथ *
 * अखंड वसिजे यागीं। जे वेदांची वजांगी। जयांचिये दिठीचां उत्संगीं। मंगळ वाढे ॥७६॥ जे पृथ्वीतळींचे *
 * देवा। जे तपोवतार सावयवा। सकळ तीर्थासि दैवा। उदयलें जे ॥७७॥ जयांचिये आस्थेचिये वोले। *
 * सत्कर्म पाल्हाळीं गेलें। संकल्पें सत्य जियालें। जयांचेनि ॥७८॥ जयांचेनि गा बोलें। अग्नीसि आयुष्य *
 * जाहालें। म्हणोनि समुद्रें पाणी आपुलें। दिधलें यांचिया प्रीती ॥७९॥ मियां लक्ष्मी डावलोनि केली *
 * परौती। फेडोनि कौस्तुभ घेतला हातीं। मग वोढविली वक्षस्थळाची वाखती। चरणरजां ॥८०॥

* आझूनि पाउलाची मुद्रा। मी हृदयीं वाहें गा सुभद्रा। जे आपुलिया दैवसमुद्रा। जतनेलागीं ॥८१॥ *
 * जयांचा कोप सुभटा। काळाग्निरुद्राचा वसौटा। जयांचा प्रसादीं फुकटा। जोडती सिद्धी ॥८२॥ ऐसे *
 * पुण्यपूज्य जे ब्राह्मण। आणि माझां ठायीं आर्तिनिपुण। आतां मातें पावती हें कवण। समर्थणें ॥८३॥ *
 * पाहें पां चंदनाचेनि अंगानिळें। शिवतिले निंब होते जे जवळे। तिहीं निर्जिवींही देवांचीं निडळें। बैसणीं *
 * केलीं ॥८४॥ मग तो चंदनु तेथ न पवे। ऐसें मनीं कैसेनि धरावें। अथवा पातला हें समर्थावें। तेव्हां *
 * कायि साच ॥८५॥ जेथ निववील ऐसिया आशा। हरें चंद्रमा आधा ऐसा। वाहिजत असे शिरसा। *
 * निरंतर ॥८६॥ तेथ निवविता आणि सगळा। परिमळें चंद्राहूनि आगळा। तो चंदनु केविं अवलीळा। *
 * सर्वांगीं न बैसे ॥८७॥ कां रथ्योदकें जियेचिये कासे। लागलिया समुद्र जालीं अनायासें। तिये गंगेसि *
 * काय अनारिसें। गत्यंतर असे ॥८८॥ म्हणोनि राजर्षि कां ब्राह्मण। जयां गती मती मीचि शरण। तयां *
 * त्रिशुद्धी मीच निर्वाण। स्थितिही मीचि ॥८९॥ यालागीं शतजजरि नावे। रिगोनि केविंनिश्चित होआवें। *
 * कैसेनि उघडिया असावें। शस्त्रवर्षी ॥९०॥ अंगावरी पडतां पाषाण। न सुवावें केविं वोडण। रोगें *
 * दाटलिया आणि उदासपण। वोखदेसीं ॥९१॥ जेथ चहूंकडे जळत वणवा। तेथूनि न निगिजे केविं *
 * पांडवा। तेविं लोका येऊनिया सोपद्रवा। केविं न भजिजे मातें ॥९२॥ अगा मातें न भजावयालागीं। *
 * कवण बळ पां आपुलां आंगीं। काइ घरीं कीं भोगीं। निश्चीती केली ॥९३॥ नातरी विद्या कीं वसया। *

* यां प्राणियांसि हा ऐसा। मज न भजतां भरंवसा। सुखाचा कोण ॥९४॥ तरी भोग्यजात जेतुलें। तें *
 * एका देहाचिया निकिया लागलें। आणि येथ देह तंव असे पडिलें। काळाचां तोंडीं ॥९५॥ बाप *
 * दुःखाचें केणें सुटलें। जेथ मरणाचे भरे लोटले। तिये मृत्युलोकींचिये शेवटिले। येणें जाहालें हाटवेळे *
 * ॥९६॥ आतां सुखेंसि जीविता। कैची ग्राहिकी कीजेल पांडुसुता। काय राखोंडी फुंकित। दीपु लागे *
 * ॥९७॥ अगा विषाचे कांदे वाटुनी। जो रसु घेइजे पिळुनी। तया नाम अमृत ठेउनी। जैसें अमर होणें *
 * ॥९८॥ तेविं विषयांचें जें सुखा। तें केवळ परम दुःख। परि काय कीजे मूर्ख। न सेवितां न सरे ॥९९॥ *
 * कां शीस खांडूनि आपुलें। पायींचां खतीं बांधिलें। तैसें मृत्युलोकींचें भलें। आहे आघवें ॥१००॥ *
 * म्हणोनि मृत्युलोकीं सुखाची कहाणी। ऐकिजेल कवणाचां श्रवणीं। कैची सुखनिद्रा आंथरुणीं। इंगळांचां *
 * ॥११॥ जिये लोकींचा चंद्र क्षयरोगी। जेथ उदयो होय अस्तालागीं। दुःख लेऊनि सुखाची आंगी। *
 * सळित जगातें ॥१२॥ जेथे मंगळाचां अंकुरीं। सवेंचि अमंगळाची पडे पोरी। मृत्यु उदराचां परिवरीं। गर्भु *
 * गिंवसी ॥१३॥ जें नाहीं तयातें चिंतवी। तंव तेंचि नेइजे गंधर्वीं। गेलियाची कवणे गांवीं। शुद्धि न लभे *
 * ॥१४॥ अगा गिंवसितां आघवा वाटी। परतलें पाउलचि नाहीं किरीटी। सेंघ निमालियांचियाचि गोठी। *
 * तियें पुराणें जेथिंचीं ॥१५॥ जेथींचिये आर्निंत्यतेची थोरी। करितया ब्रह्मयाचें आयुष्यवेरी। कैसें नाहीं *
 * होणें अवधारीं। निपटूनियां ॥१६॥ ऐसी लोकींची जिये नांदणूक। तेथ जन्मले आथि जे लोका *
 * तयांचिये निश्चिंतीचें कौतुक। दिसत असे ॥१७॥ पै दृष्टादृष्टीचिये जोडी। लागीं भांडवल न सुटे *

* तूं मन हें मीचि करीं। माझां भजनीं प्रेम धरीं। सर्वत्र नमस्कारीं। मज एकातें ॥१७॥ माझेनि *
 * अनुसंधानें देख। संकल्पु जाळणें निःशेख। मद्याजी चोख। याचि नांव ॥१८॥ ऐसा मियां आथिला *
 * होसी। तेथ माझियाचि स्वरूपा पावसी। हें अंतःकरणींचें तुजपासीं। बोलिजत असे ॥१९॥ अगा *
 * आवधिया चोरिया आपुलें। जें सर्वस्व आम्हीं असे ठेविलें। तें पावोनि सुख संचलें। होऊनि ठासी *
 * ॥५२०॥ ऐसें सांवळेनि परब्रह्मों। भक्तकामकल्पद्रुमें। बोलिलें आत्मारामें। संजयो म्हणे ॥२१॥ अहो *
 * ऐकिजत असे कीं अवधारा। तंव इया बोला निवांत म्हातारा। जैसा म्हैसा नुठी कां पुरा। तैसा उगाचि *
 * असे ॥२२॥ तेथ संजयें माथा तुकिला। अहा अमृताचा पाऊस वर्षला। कीं हा एथ असतुचि गेला। *
 * सेजिया गांवा ॥२३॥ तन्ही दातारु हा आमुचा। म्हणोनि हें बोलतां मैलें वाचा। काइ झालें ययाचा। *
 * स्वभावोचि ऐसा ॥२४॥ परि बाप भाग्य माझे। जे वृत्तांतु सांगावयाचेनि व्याजें। कैसा रक्षिलों *
 * मुनिराजें। श्रीव्यासदेवें ॥२५॥ येतुलें हें वाडें सायासें। जंव बोलत असे दृढें मानसें। तंव न धरवेचि *
 * आपुलिया ऐसें। सात्त्विकें केलें ॥२६॥ चित्त चाकाटलें आटु घेता। वाचा पांगुळली जेथिंची तेथ। *
 * आपादकंचुकिता। रोमांच आले ॥२७॥ अर्धोन्मीलित डोळे। वर्षताति आनंदजळें। आंतुलिया सुखोर्मीचेनि *
 * बळें। बाहेरि कांपे ॥२८॥ पै आघवांचि रोममूळीं। आली स्वेदकणिका निर्मळी। लेइला मोतियांचीं *

* कडियाळीं। आवडे तैसा ॥ २९॥ ऐसा महासुखाचेनि आर्तिरसें। जेथ आटणी होईल जीवदशे। तेथे *
 * निरोविलें व्यासें। तें नेदीच हों ॥५३०॥ आणि कृष्णार्जुनाचें बोलणें। घों करी आलें श्रवणें। कीं *
 * देहस्मृतीचा तेणें। वापसा केला ॥३१॥ तेव्हां नेत्रींचें जळ विसर्जी। सर्वांगींचा स्वेदु परिमार्जी। *
 * तेवींचि अवधान म्हणे हो जी। धृतराष्ट्रातें ॥३२॥ आतां कृष्णवाक्यबीजा निवाडु। आणि संजय *
 * सात्त्विकाचा बिबडु। म्हणोनि श्रोतया होईल सुरवाडु। प्रमेयपिकाचा ॥३३॥ अहो अळुमाळ अवधान *
 * देयावें। येतुलेनि आनंदाचे राशीवरी बैसावें। बाप श्रवणेंद्रिया दैवें। घातली माळ ॥३४॥ म्हणोनि *
 * विभूतींचा ठावो। अर्जुना दावील सिद्धांचा रावो। तो एका म्हणे ज्ञानदेवो। निवृत्तीचा ॥५३५॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम

नवमोऽध्यायः ॥ (श्लोक ३४; ओव्या ५३५)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय दहावा

नमो विशदबोधविदग्धा। विद्यारविंदप्रबोधा। पराप्रमेयप्रमदा। विलासिया॥१॥ नमो संसारतमसूर्या।
अप्रतिमपरमवीर्या। तरुणतरतूर्या। लालनलीला ॥२॥ नमो जगदखिलपालना। मंगळमणिनिधाना।
स्वजनवनचंदना। आराध्यलिंगा ॥३॥ नमो चतुरचित्तचकोरचंद्रा। आत्मानुभवनरेंद्रा। श्रुतिगुणसमुद्रा।
मन्मथमन्मथा ॥४॥ नमो सुभावभजनभाजना। भवेभकुंभभंजना। विश्वोद्भवभुवना। श्रीगुरुराया ॥५॥
तुमचा अनुग्रहो गणेशु। जें दे आपुला सौरसु। तें सारस्वतीं प्रवेशु। बाळकाही आथी ॥६॥ दैविकी
उदार वाचा। जें उद्देशु दे नाभिकाराचा। तें नवरसदीपांचा। थावो लाभे ॥७॥ जी आपुलिया स्नेहाची
वागेश्वरी। जरी मुकेयातें अंगीकारी। तो वाचस्पतीशीं करी। प्रबंधुहोडा ॥८॥ हें असो दिठी जयावरी
झळके। कीं हा पद्मकरु माथां पारुखे। तो जीवचि परि तुके। महेशेंशीं ॥९॥ एवढें जिये महिमेचें
करणें। तें वाचाळपणें वानूं मी कवणें। का सूर्याचिया आंगा उटणें। लागत असे ॥१०॥ केउता
कल्पतरुवरी फुलौरा। कायसेनि पाहुणेरु क्षीरसागरा। ऐसा कवणें वासीं कापुरा। सुवासु देवों ॥११॥

चंदनातें कायसेनि चर्चावें। अमृतातें केउतें रांधावें। गगनावरी उभवावें। घडे केवीं ॥१२॥ तैसें
श्रीगुरुचें महिमाना। आकळितें कें असे साधना। हें जाणोनि मियां नमना। निवांत केलें ॥१३॥ तरी
प्रज्ञेचेनि आथिलेपणें। श्रीगुरुसमर्था रूप म्हणें। तरि मोतियांसी भिंग देणें। तैसें होईल ॥१४॥ कां
साडेपंधरया रजतवणी। तैशीं स्तुतीचीं बोलणीं। उगियाचि माथा ठेविजे चरणीं। हेंचि भलें ॥१५॥
मग म्हणितलें जी स्वामी। भलेनि ममत्वे देखिलें तुम्हीं। म्हणोनि कृष्णार्जुनसंगमीं। प्रयागवटु जाहलों
॥१६॥ मागां दूध दे म्हणतलियासाठीं। आघवियाचि क्षीराब्धीची करुनि वाटी। उपमन्यूपुढें धूर्जटी।
ठेविली जैसी ॥१७॥ ना तरी वैकुंठपीठनायकें। रुसला ध्रुव कवतिकें। बुझाविला देऊनि भातुकें।
ध्रुवपदाचें ॥१८॥ तैसी ब्रह्मविद्यारावो। सकळ शास्त्रांचा विसंवता ठावो। ते भगवद्गीता वोविया
गावों। ऐसें केलें ॥१९॥ जे बोलणियाचां रानीं हिंडतां। नायकिजे फळलिया अक्षरांची वार्ता। परि ते
वाचाचि केली कल्पलता। विवेकाची ॥२०॥ होती देहबुद्धि एकसरी। आनंदभांडारा केली वोवरी।
मन गीतार्थसागरीं। जळशयन जालें ॥२१॥ तैसें एकैक देवांचें करणें। तें अपार बोलों केवीं मी जाणें।
तन्ही अनुवादलों धीटपणें। तें उपसाहिजो जी ॥२२॥ आतां आपुलेनि कृपाप्रसादें। मियां भगवद्गीता
वोवीप्रबंधें। पूर्वखंड विनोदें। वाखाणिलें ॥२३॥ प्रथमीं अर्जुनाचा विषादु। दुर्जी बोलिला योगु विशदु।
परि सांख्यबुद्धीसि भेदु। दाऊनियां ॥२४॥ तिजीं केवळ कर्म प्रतिष्ठिलें। तेंचि चतुर्थीं ज्ञानेंशीं
प्रगटिलें। पंचमीं गव्हारिलें। योगतत्त्व ॥२५॥ तेंचि षष्ठामार्जीं प्रगट। आसनालागोनि स्पष्ट। जीवात्मभाव

* एकवाटा होती जेणें ॥२६॥ तैसीचि जे योगस्थिति। आणि योगभ्रष्टां जे गति। ते आघवीचि उपपत्ती। *
 * सांगितली ॥२७॥ तयावरी सप्तमीं। प्रकृतिपरिहार उपक्रमीं। भजति जे पुरुषोत्तमीं। ते बोलिले चान्ही *
 * ॥२८॥ पाठीं सप्तमीची प्रश्नसिद्धी। बोलोनि प्रयाणसिद्धी। एवं ते सकळवाक्यअवधि। अष्टमाध्यायीं *
 * ॥२९॥ आतां शब्दब्रह्मीं असंख्याके। जेतुला कांहीं आर्भिप्राय पिके। तेतुला महाभारतें ऐकें। लक्षें *
 * जोडे ॥३०॥ आतां आठरें पर्वी भारतीं। तें लाभे कृष्णार्जुनवाचोक्तीं। आणि जो आर्भिप्रावो सातेंशतीं। *
 * तो एकलाचि नवमीं ॥३१॥ म्हणोनि नवमींचिया आर्भिप्राया। सहसा मुद्रा लावावया। बिहाला मी *
 * वायां। गर्व कां करूं ॥३२॥ अहो गूळा साखरे मालेयाचे। हे बांधे तरी एकाचि रसाचे। परि स्वाद *
 * गोडियेचे। आनआन जैसे ॥३३॥ एक जाणोनियां बोलती। एक ठायेंठावो जाणविती। एक जाणों *
 * जातां हारपती। जाणते गुणेंशीं ॥३४॥ हे ऐसे अध्याय गीतेचे। परि अनिर्वाच्य नवमाचें। तो अनुवादलों *
 * हें तुमचें। सामर्थ्य प्रभू ॥३५॥ कां एकाचि काठि तपिन्नली। एकीं सृष्टीवरी सृष्टी केली। एकीं पाषाण *
 * वाऊनि उतरलीं। समुद्रीं कटकें ॥३६॥ एकीं आकाशीं सूर्यातें धरिलें। एकीं समुद्र चुळीं भरिलें। तैसें *
 * मज नेणतयाकरवीं बोलविलें। आर्निर्वाच्य तुम्हीं ॥३७॥ परि हें असो एथ ऐसें। रामरावण झुंजिन्नले *
 * कैसे। रामरावण जैसे। मीनले समरीं ॥३८॥ तैसें नवमीं कृष्णाचें बोलणें। तें नवमीचियाचि ऐसें मी *
 * म्हणें। या निवाडा तत्त्वज्ञु जाणे। जया गीतार्थु हातीं ॥३९॥ एवं नवही अध्याय पहिले। मियां *

* मतीसारिखे वाखाणिले। आतां उत्तरखंड उपाइलें। ग्रंथाचें ऐका ॥४०॥ येथ विभूती प्रतिविभूती। *
 * प्रस्तुत अर्जुना सांगिजेती। ते विद्गदा रसवृत्ती। म्हणिपैल कथा ॥४१॥ देशियेचेनि नागरपणें। शांतु *
 * शृंगारातें जिणे। तरि ओंविया होती लेणें। साहित्यासी ॥४२॥ मूळग्रंथींचिया संस्कृता। वरि मन्हाटी *
 * नीट पढतां। आर्भिप्राय मानलिया उचिता। कवण भूमी हें न चोजवे ॥४३॥ जैसें अंगाचेनि सुंदरपणें। *
 * लेणियासी आंगचि होय लेणें। अळंकारिलें कवण कवणें। हें निर्वचेना ॥४४॥ तैसी देशी आणि *
 * संस्कृत वाणी। एका भावार्थाचां सोकासनीं। शोभती आयणी। चोखट आइका ॥४५॥ उठावलिया *
 * भावा रूपा। करितां रसवृत्तीचें लागे वडपा। चातुर्य म्हणे पडपा। जोडलें आम्हां ॥४६॥ तैसें देशियेचें *
 * लावण्या। हिरोनि आणिलें तारुण्या। मग रचिलें अगण्या। गीतातत्त्व ॥४७॥ तैसा चराचरपरमगुरु। *
 * चतुरचित्तचमत्कारु। तो ऐका यादवेश्वरु। बोलता जाहला ॥४८॥ ज्ञानदेव निवृत्तीचा म्हणे। काई *
 * बोलिलें श्रीहरी तेणें। अर्जुना आघवियाचि मातू अंतःकरणें। धडौता आहासि ॥४९॥

* **श्रीभगवानुवाच :** भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥

* आम्हीं मागील जें निरूपण केलें। तें तुझें अवधानचि पाहिलें। तंव टांचें नव्हे भलें। पुरतें आहे *
 * ॥५०॥ घटीं थोडेसें उदक घालिजे। तेणें न गळे तरी वरिता भरिजे। तैसा परिसौनि पाहिलासि तंव *
 * परिसविजे। ऐसेंचि होतसे ॥५१॥ अवचितयावरी सर्वस्व सांडिजे। चोख तरी तोचि भांडारी कीजे। *
 * तैसा तूं आतां माझें। निजधाम कीं ॥५२॥ तैसें अर्जुना येउतें सर्वेश्वरें। पाहोनि बोलिलें आदरें। गिरी *

* देखोनि सुभरे। मेघु जैसा ॥५३॥ तैसा कृपाळुवांचा रावो। म्हणे आइकें गा महाबाहो। सांगितलाचि *
 * आर्भिप्रावो। सांगेन पुढती ॥५४॥ प्रतिवर्षी क्षेत्र पेरिजे। पिके तरी वाहो नुबगिजे। पिकासी निवाडु *
 * देखिजे। आर्धिकाधिक ॥५५॥ पुढतपुढती पुटें देतां। जोडे वानियेची आर्धिकता। तें सोनें पांडुसुता। *
 * शोधूंचि आवडे ॥५६॥ तैसें एथ पार्था। तुज आभार नाहीं सर्वथा। आम्ही आपुलियाचि स्वार्था। *
 * बोलौनि आम्ही ॥५७॥ अगा बाळका लेवविजे लेणें। त्याप्रमाणें तें काय जाणें। तो सोहळा भोगणें। *
 * जननीयेसी दृष्टी ॥५८॥ तैसें तुजें हित आघवें। जंव जंव कां तुज फावे। तंव तंव आमुचें सुख दुणावे। *
 * ऐसें असे ॥५९॥ आतां असो हे विकडी। मज उघड तुझी आवडी। म्हणोनि तृप्तीची सवडी। बोलतां *
 * न पडे ॥६०॥ आम्हां येतुलियाचि कारणें। तेंचि तें तुजशीं बोलणें। परि असो हें अंतःकरणें। अवधान *
 * दे ॥६१॥ ऐकें ऐकें सुवर्म। वाक्य माझें परमा जें अक्षरें लेऊनि परब्रह्म। तुज खेंवासि आलें ॥६२॥ *

* न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः। अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥२॥ *

* तरी किरीटी तूं मातें। नेणसी ना निरुतें। तरि गा जो मी एथें। तें विश्वचि हें ॥६३॥ एथ वेद मुके *
 * जाहाले। मन पवन पांगुळले। रातीविण मावळले। रविशशी ॥६४॥ उदरींचा गर्भु जैसा। नेणे मायेची *
 * वयसा। देवांसि मी तैसा। चोजवेना ॥६५॥ आणि जळचरां उदधीचें मान। मशकां नोलांडवे गगना। *
 * तैसें महर्षीचें ज्ञान। नेणे मातें ॥६६॥ मी कवण केतुला। कवणाचा कें जाहला। निरुती या करितां *

* बोला। युगें गेलीं ॥६७॥ महर्षी आणि या देवां। येरां भूतजातां सर्वां। मी आदि म्हणोनि पांडवा। *
 * जाणतां अवघड ॥६८॥ उतरलें उदक पर्वत वळघे। कां वाढतें झाड मुळीं लागे। तरी मियां जालेनि *
 * जगें। जाणिजे मी ॥६९॥ कां गाभेवनें वटु गिंवसवे। तरंगीं सागरु सांठवे। कां परमाणूमाजीं सामावे। *
 * भूगोलु हा ॥७०॥ तरी मियां जालियां जीवां। महर्षी अथवा देवां। मातें जाणावया होआवा। अवकाशु *
 * गा ॥७१॥ *

* यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्। असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥ *

* ऐसाही जरी विपायें। सांडुनि पुढील पाये। सर्वेद्रियांसि होये। पाठिमोरा जो ॥७२॥ प्रवर्तलाही *
 * वेगीं बहुडे। देह सांडुनि मागलीकडे। महाभूतांचिया चढे। माथयावरी ॥७३॥ तैसा राहोनि ठायठिके। *
 * स्वप्रकाशें चोखें। अजत्व माझें देखें। आपुलिये डोळां ॥७४॥ मी आदीसि परु। सकळलोकमहेश्वरु। *
 * ऐसिया मातें जो नरु। यापरी जाणे ॥७५॥ तो पाषाणामाजि परिसु। रसांमाजी सिद्धरसु। तैसा *
 * मनुष्याकृति अंशु। तो माझाचि जाण ॥७६॥ तो चालतें ज्ञानाचें बिंब। तयाचे अवयव ते सुखाचे *
 * कोंभा। परी माणुसपणाची भांब। लोकाचि भागु ॥७७॥ अगा अवचिता कापुरा। माजीं सांपडला हिरा। *
 * वरि पडिलिया नीरा। न निगे केवीं ॥७८॥ तैसा मनुष्यलोकांआंतु। तो जरी जाहला प्राकृतु। तन्ही *
 * प्रकृतिदोषाची मातु। नेणिजे तेथ ॥७९॥ तो आपसयेंचि सांडिजे पापीं। जैसा जळत चंदनु सर्पीं। *
 * तैसा मातें जाणे तो संकल्पीं। वर्जुनि घालिजे ॥८०॥ तेंचि मातें कैसें जाणिजे। ऐसें कल्पी जरी चित्त *

तुझे। तरी मी ऐसा हे माझे। भाव ऐकें ॥८१॥ जे वेगळालां भूतीं। सारिखे होऊनि प्रकृती। विखुरले
आहेति त्रिजगतीं। आघविये ॥८२॥

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः। सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥४॥

ते प्रथम जाण बुद्धि। मग ज्ञान जें निरवधि। असंमोह सहनसिद्धि। क्षमा सत्य ॥८३॥ मग शम
दम दोन्ही। सुख दुःख वर्तत जनीं। अर्जुना भावाभाव मानी। भावाचिमार्जी ॥८४॥

आर्हिसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः। भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥५॥

आतां भय आणि निर्भयता। आर्हिसा आणि समता। हे मम रूपची पांडुसुता। ओळख तूं ॥८५॥
दान यश अपकीर्ति। ते जे भाव सर्वत्र वसती। ते मजचि पासूनि होती। भूतांचां ठायीं ॥८६॥ जैसीं
भूतें आहाती सिनानीं। तैसेचि हे वेगळाले मानीं। एक उपजती माझां ज्ञानीं। एक नेणती मातें ॥८७॥
अगा प्रकाश आणि कडवसें। हे सूर्याचिस्तव जैसें। प्रकाश उदयीं दिसे। तम अस्तूसीं ॥८८॥ आणि
माझे जें जाणणें नेणणें। तें तंव भूतांचिया दैवांचे करणें। म्हणोनि भूतीं भावाचें होणें। विषम पडे
॥८९॥ यापरी माझां भावीं। हे जीवसृष्टि आहे आघवी। गुंतली असे जाणावी। पंडुकुमरा ॥९०॥
आतां इये सृष्टीचे पालका तयां आधीन वर्तती लोका। ते अकरा भाव आणिका। सांगेन तुज ॥९१॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा। मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥६॥

तरी आघवांचि गुणीं वृद्ध। जे महर्षीमाजि प्रबुद्ध। कश्यपादि प्रसिद्ध। सप्त ऋषी ॥९२॥ आणिकही
सांगिजतील। जे चौदा आंतील। स्वायंभू मुख्य मुदल। चारी मनु ॥९३॥ ऐसे हे अकरा। माझां मनीं
जाहाले धनुर्धरा। सृष्टीचिया व्यापारा। लागोनियां ॥९४॥ जें लोकांची ये व्यवस्था न पडे। जें या
त्रिभुवनाचें कांहीं न मांडे। तें महाभूतांचें दळवाडें। अचुंबित असे ॥९५॥ तेंचि जे जाहाले। इहीं
लोकपाळ केले। अध्यक्ष रचुनि ठेविले। इहीं जन ॥९६॥ म्हणोनि अकरा हे राजा। मग येर लोक
यांचिया प्रजा। ऐसा हा विस्तारु माझा। ओळख तूं ॥९७॥ पाहें पां आरंभीं बीज एकलें। मग तेंचि
विरुढलिया बुड जाहालें। बुडीं कोंभ निघाले। खांदियांचे ॥९८॥ खांदियांपासूनि अनेका। पसरलिया
शाखोपशाखा। शाखांस्तव देखा। पल्लवपानें ॥९९॥ पल्लवीं फूल फळ। एवं वृक्षत्व जाहालें सकळा।
तें निर्धारितां केवळ। बीजचि तें ॥१००॥ ऐसें मी एकचि पहिलें। मग मी तें मनातें व्यालें। तेथ सप्त
ऋषि जाहाले। आणि चारी मनु ॥१०१॥ इहीं लोकपाळ केले। लोकपाळीं विविध लोक सजिले।
लोकांपासूनि निपजलें। प्रजाजात ॥१०२॥ ऐसेनि हें विश्व येथें। मीचि प्रसवला ना निरुतें। परि भावाचेनि
हातें। माने जया ॥३॥

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः। सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥७॥

यालागीं सुभद्रापती। हे भाव इया माझिया विभूती। आणि यांचिया व्याप्ती। व्यापिलें विश्व ॥४॥
म्हणोनि गा यापरी। ब्रह्मादिपिपीलिकावरी। मीवांचूनि दुसरी। गोठी नाही ॥५॥ ऐसें जाणे जो साचें।

तया चेइरें जाहालें ज्ञानाचें। म्हणोनि उत्तम मध्यम भेदाचें। दुःस्वप्न तया ॥६॥ मी माझिया विभूती।
 आणि विभूतीं व्यष्टलिया व्यक्ती। हें आघवें योगप्रतीती। एकचि मानी ॥७॥ म्हणोनि निःशकें येणें
 महायोगें। मज मीनला मनाचेनि आंगें। एथ संशय करणें न लगे। तो त्रिशुद्धी जाहला ॥८॥ कां जे
 ऐसें किरीटी। मातें भजे जो अभेदा दिठी। तयाचिये भजनाचिये नाटीं। सूती मज ॥९॥ म्हणऊनि
 अभेदें जो भक्तियोगु। तेथ शंका नाहीं नये खंगु। करितां ठेला तरी चांगु। तें सांगितलें षष्ठीं ॥११०॥
 तोचि अभेदु कैसा। हें जाणावया मानसा। साद जाली तरी परियेसा। बोलिजेल ॥११॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते! इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८॥

तरि मीचि एक सर्वा। या जगा जन्म पांडवा। आणि मजचिपासूनि आघवा। निर्वाहो यांचा ॥१२॥
 कल्लोळमाळा अनेगा। जन्म जळींचि पै गा। आणि तयां जळचि आश्रयो तरंगा। जीवनही जळ
 ॥१३॥ ऐसें आघवांचि ठायीं। तया जळचि जेविं पाहीं। तैसा मी वांचूनि नाहीं। विश्वीं इये ॥१४॥
 ऐसिया व्यापका मातें। मानूनि जे भजती भलतेथें। परि साचोकारें उदितें। प्रेमभावे ॥१५॥
 देशकाळवर्तमान। आघवें मजसीं करुनि आर्भिन्ना। जैसा वायु होऊनि गगन। गगनींचि विचरे ॥१६॥
 ऐसेनि जे निजज्ञानीं। खेळत सुखें त्रिभुवनीं। जगद्रूपा मनीं। सांठऊनि मातें ॥१७॥ जें जें भेटे भूता
 तें तें मानिजे भगवंता। हा भक्तियोगु निश्चिता जाण माझा ॥१८॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥९॥

चित्तें मीचि जाहाले। मियांचि प्राणें धाले। जीवों मरों विसरले। बोधाचिया भुली ॥१९॥ मग तया
 बोधाचेनि माजें। नाचती संवादसुखाचीं भोजें। आतां एकमेकां घेपे दीजे। बोधचि वरी ॥१२०॥ जैशीं
 जवळिकेंचीं सरोवरें। उचंबळलिया कालवती परस्परें। मग तरंगासि धवळारें। तरंगचि होती ॥२१॥
 तैसी येरयेरांचिये मिळणी। पडत आनंदकल्लोळांची वेणी। तेथ बोध बोधाचीं लेणीं। बोधेंचि मिरवी
 ॥२२॥ जैसें सूर्यें सूर्यातें वोंवाळिलें। कीं चंद्रें चंद्रम्या क्षेम दिधलें। नातरी सरिसेनि पाडें मीनले। दोनी
 वोघ ॥२३॥ तैसें प्रयाग होत सामरस्याचें। वरी वोसाण तरत सात्त्विकाचें। ते संवादचतुष्पथींचे।
 गणेश जाहले ॥२४॥ तेव्हां तया महासुखाचेनि भरें। धांवोनि देहाचिये गांवाबाहेरें। मियां धाले तेणें
 उद्धारें। लागती गाजों ॥२५॥ पै गुरुशिष्यांचां एकांतीं। जे अक्षरा एकाचि वदंती। ते मेघाचियापरी
 त्रिजगतीं। गर्जती सेंघ ॥२६॥ जैसी कमळकळिका जालेपणें। हृदयींचिया मकरंदातें राखों नेणे। दे
 राया रंका पारणें। आमोदाचें ॥२७॥ तैसेंनि मातें विश्वीं कथिता। कथितेनि तोषे कथूं विसरता। मग
 तया विसरामाजीं विरता। आंगें जीवें ॥२८॥ ऐसें प्रेमाचेनि बहुवसपणें। नाहीं राती दिवो जाणणें। केलें
 माझें सुख अव्यंगवाणें। आपणपेयां जिहीं ॥२९॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥१०॥

तयां मग जें आम्हीं कांहीं। द्यावें अर्जुना पाहीं। ते ठायींचीच तिहीं। घेतली सेल ॥१३०॥ कां

जे ते जिया वाटा। निगाले गा सुभटा। ते सोय पाहोनि अव्हांटा। स्वर्गापवर्ग ॥३१॥ म्हणोनि तिहीं जें
 प्रेम धरिलें। तेंचि आमुचें देणें उपाइलें। परि आम्हीं देयावें हेंहि केलें। तिहींची म्हणियें ॥३२॥ आतां
 यावरी येतुलें घडे। जें तेंचि सुख आगळें वाढे। आणि काळाची दिठी न पडे। हें आम्हां करणें ॥३३॥
 लळेयाचिया बाळका किरीटी। गवसणी करुनि स्नेहाचिया दिठी। जैसी खेळतां पाठोपाठीं। माउली
 धांवे ॥३४॥ तें जो जो खेळ दावी। तो तो पुढें सोनयाचा करुनि ठेवी। तैसी उपास्तीची पदवी।
 पोषित मी जायें ॥३५॥ जिये पदवीचेनि पोषकें। ते मातें पावती यथासुखें। हे पाळती मज विशेखें।
 आवडे करूं ॥३६॥ पें गा भक्तासि माझें कोडा। मज तयाचे अनन्यगतीची चाडा। कां जे प्रेमळांचें
 सांकडा। आम्हाते घरीं ॥३७॥ पाहें पां स्वर्ग मोक्ष उपायिले। दोन्ही मार्ग तयांचिये वाहणी केले। आम्हीं
 आंगही शेषा वेंचिलें। लक्ष्मीयेसीं ॥३८॥ परि आपणपेंवीण जें एका तें तैसेंचि सुख साजुका। सप्रेमळांलागीं
 देखा। ठेविलें जतन ॥३९॥ हा ठायवरी किरीटी। आम्ही प्रेमळु घेवों आपणपयासाठीं। या बोलीं
 बोलिजत गोष्टी। तैसिया नव्हती गा ॥१४०॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥११॥

म्हणोनि मज आत्मयाचा भावो। जिहीं जियावया केला ठावो। एक मीवांचूनि वावो। येर मानिलें
 जिहीं ॥४१॥ तयां तत्त्वज्ञां चोखटां। दिवी पोतासाची सुभटा। मग मीचि होऊनि दिवटा। पुढां पुढां

चालें ॥४२॥ अज्ञानाचिये राती। मार्जीं तमाची मिळणी दाटती। ते नाशूनि घालीं परौती। करीं
 नित्योदयो ॥४३॥ ऐसें प्रेमळाचेनि प्रियोत्तमें। बोलिलें जेथ पुरुषोत्तमें। तेथ अर्जुन मनोधर्मी। निवालों
 म्हणतसे ॥४४॥

अर्जुन उवाच : परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्। पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥

अहो जी अवधारा। भला केरु फेडिला संसारा। जाहलों जननीजठर जोहरा। वेगळा प्रभू
 ॥४५॥ जी जन्मलेपण आपुलें। हें आजि मियां डोळां देखिलें। जीवित हाता चढलें। आवडतसें
 ॥४६॥ आजि आयुष्या उजवण जाहली। माझिया दैवा दशा उदयली। जे वाक्यकृपा लाधली।
 दैविकेनि मुखें ॥४७॥ आतां येणें वचनतेजाकारें। फिटलें आंतील बाहेरील आंधारें। म्हणोनि देखतसें
 साचोकारें। स्वरूप तुझें ॥४८॥ तरी होसी गा तूं परब्रह्म। जें या महाभूतां विसंवतें धाम। पवित्र तूं
 परमा जगन्नाथा ॥४९॥ तूं परम दैवत तिहीं देवां। तूं पुरुष जी पंचविसावा। दिव्य तूं प्रकृतिभावा।
 पैलीकडील ॥५०॥ अनादिसिद्ध तूं स्वामी। जो नाकळिजसी जन्मधर्मी। तो तूं हें आम्हीं। जाणितलें
 आतां ॥५१॥ तूं या कालयंत्रासि सूत्री। तूं जीवकळेची आर्धिष्ठात्री। तूं ब्रह्मकटाहधात्री। हें कळलें
 फुडें ॥५२॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिनरिदस्तथा। आर्षितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

पें आणिकही एके परी। इयेचि प्रतीतीची येतसे थोरी। जे मार्गे ऐसेंचि ऋषीश्वरीं। सांगितलें तूतें

॥५३॥ परि तया सांगितलियाचें साचपण। हें आतां देखतसे अंतःकरणा जे कृपा केली आपणा।
 म्हणोनि देवा ॥५४॥ एन्हवीं नारदु अखंड जवळां ये। तोही ऐसेंचि वचनें गाये। परि अर्थ न बुजोनि
 ठाये। गीतसुखचि ऐकों ॥५५॥ हां गा आंधळ्यांचां गांवीं। आपणपें प्रगटले रवी। तरि तिहीं वोतपलीचि
 घ्यावी। वांचूनि प्रकाशु कैचा ॥५६॥ येरवीं देवर्षिही अध्यात्म गातां। आहाच रागांगेंसीं जे मधुरता।
 तेचि फावे येर चित्ता। नलगेचि कांहीं ॥५७॥ पै आर्सितादेवलाचेनहि मुखें। मी एवंविधा तूंतें आइकें।
 परि तें बुद्धि विषयविखें। घारिली होती ॥५८॥ विषयविषाचा पडिपाडू। गोड परमार्थु लागे कडू। कडू
 विषय तो गोडू। जीवासी जाहला ॥५९॥ आणि हें आणिकांचें काय सांगावें। राउळा आपणचि
 येऊनि व्यासदेवें। तुझें स्वरूप आघवें। सर्वदा सांगिजे ॥१६०॥ परि तो अंधारीं चिंतामणि देखिला।
 जेवीं नव्हे या बुद्धी उपेक्षिला। पाठीं दिनोदयीं वोळखिला। होय म्हणोनि ॥६१॥ तैशीं व्यासादिकांचीं
 बोलणीं। तिया मजपाशीं चिद्रत्नांचिया खाणी। परि उपेक्षया जात होतिया तरणी। तुजवीण कृष्णा
 ॥६२॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशवा। न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

ते आतां वाक्यसूर्यकर तुझे फाकले। आणि ऋषीं मार्ग होते जे कथिले। तयां आघवयांचेंचि
 फिटलें। अनोळखपण ॥६३॥ जी ज्ञानाचें बीज तयांचे बोल। माझिये हृदयभूमिके पडिले सखोल।

वरि इये कृपेची जाहाली वोला। म्हणोनि संवादफळेंशीं उठले ॥६४॥ अहो नारदादिकां संतां।
 त्यांचिया युक्तिरूप सरिता। मी महोदधि जालां अनंता। संवादसुखाचा ॥६५॥ प्रभु आघवेनि येणें
 जन्में। जियें पुण्यें केलीं मियां उत्तमें। तयांचीं न ठकतीचि अंगीं कामें। सद्गुरु तुवा ॥६६॥ एन्हवीं
 वडिलवडिलांचेनि मुखें। मी सदां तूंतें कानीं आइकें। परि कृपा न किजेचि तुवां एके। तंव नेणवेचि
 कांहीं ॥६७॥ म्हणोनि भाग्य जें सानकूळ। जालिया केले उद्यम सदां सफळा। तैसें श्रुताधीत सकळा।
 गुरुकृपा साच ॥६८॥ जी बनकरु झाडेंसी जीवेंसाटीं। पाडूनि जन्में काढी आटी। परि फळेंसीं तेंचि
 भेटी। जें वसंतु पावे ॥६९॥ अहो विषमा जें वोहट पडे। तें मधुर तें मधुर आवडे। पै रसायनें तें गोडे।
 जेव्हां आरोग्य देहीं ॥१७०॥ कां इंद्रियें वाचा प्राण। यां जालियांचें तेंचि सार्थकपण। जें चैतन्य
 येउनि आपण। संचरे मार्जी ॥७१॥ तैसें शब्दजात आलोडिलें। अथवा योगादिक जें अभ्यासिलें। तें
 तेंचि म्हणों ये आपुलें। जें सानुकूल गुरु ॥७२॥ ऐसिये जालिये प्रतीतीचेनि मार्जे। अर्जुन निश्चयाचि
 नाचतुसे भोजें। तेवींचि म्हणे देवा तुझें। वाक्य मज मानलें ॥७३॥ तरि साचचि हें कैवल्यपती। मज
 त्रिशुद्धी आली प्रतीती। जे तूं देवदानवांचिये मती। जोगा नव्हसी ॥७४॥ तुझें वाक्य व्यक्ती न येतां
 देवा। आपुलिया जाणे जाणवा। तैसा कहींचि नाहीं हें सद्भावा। भरंवसेनि आलें ॥७५॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम। भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥

एथ आपुलें वाडपण जैसें। आपणचि जाणजे आकाशें। कां मी येतुली घनवट ऐसें। पृथ्वीचि

जाणे ॥७६॥ तैसा आपुलिये सर्वशक्ती। तुज तूंचि जाणूं लक्ष्मीपती। येर वेदादिक मती। मिरवती
वायां ॥७७॥ हां गा मनातें मागां सांडावें। पवनातें वावीं मवावें। आदिशून्य उतरोनि जावें। केउतें
बाहीं ॥७८॥ तैसैं हें तुझें जाणणें आहे। म्हणोनि कोणाही ठाकतें नोहे। आतां तुझें ज्ञान होये।
तुजचिजोगें ॥७९॥ जी आपणपयातें तूंचि जाणसी। आणिकातें सांगावयाही तूं समर्थ होसी। तरि
आतां एक वेळ घाम पुसीं। आर्तीचिये निडळींचा ॥१८०॥ हें आइकिलें कीं भूतभावना।
त्रिभुवनगजपंचानना। सकलदेवदेवतार्चना। जगन्नायका ॥८१॥ जरी थोरी तुझी पाहत आहों। तरी
पासीं उभे ठाकावयाही योग्य नोहों। या शोच्यता विनवूं बिहों। तरी आन उपायो नाहीं ॥८२॥ भरले
सरितासमुद्र चहूंकडे। परि ते बापियासि कोरडे। कां जें मेघौनि थेंबुटा पडे। तें पाणी कीं तया ॥८३॥
तैसैं गुरु जी सर्वत्र आथी। परि कृष्णा आम्हां तूंचि गती। हें असो मजप्रती। विभूती सांगें ॥८४॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः। याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥१६॥

जी तुझिया विभूती आघविया। परि व्यापिती या शक्ती दिव्या जिया। तिया आपुलिया दावाविया।
आपण मज ॥८५॥ जिहीं विभूतीं ययां समस्तां। लोकांतें व्यापूनि आहाती अनंता। तिया प्रधाना
नामांकिता। प्रगटा करीं ॥८६॥

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्। केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥

जी कैसें मियां तूतें जाणावें। काय जाणोनि सदा चिंतावें। जरी तूंचि म्हणों आघवें। तरि
चिंतनचि न घडे ॥८७॥ म्हणोनि मागां भाव जैसे। आपुले सांगितले तुवां उद्देशें। आतां विस्तारोनि
तैसे। एक वेळ बोलें ॥८८॥ जयां जयां भावांचां ठायीं। तूतें चिंतितां मज सायासु नाहीं। तो विवळ
करुनि देई। योगु आपुला ॥८९॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दना भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥१८॥

आणि पुसलिया जिया विभूती। त्याही बोलाविया भूतपती। एथ म्हणसी जरी पुढतीं। काय सांगों
॥१९०॥ तरी हा भाव मना। झणें जाय हो जनार्दना। पै प्राकृताही अमृतपाना। ना न म्हणवे जी
॥१९१॥ जें काळकूटाचें सहोदरा जें मृत्युभेणें प्याले अमरा। तरि दिहाचे पुरंदरा। चौदा जाती ॥१९२॥
ऐसा कवण एक क्षीराब्धीचा रसु। जया वायांचि अमृतपणाचा आभासु। तयाचाही मिठांशु। जे पुरे
म्हणों नेदी ॥१९३॥ तया पाबळेयाही येतुलेवरी। गोडियेची आथि थोरी। मग हें तंव अवधारीं।
परमामृत साचें ॥१९४॥ जें मंदराचळु न ढाळितां। क्षीरसागरु न डहुळितां। अनादि स्वभावता। आइतें
आहे ॥१९५॥ जें द्रव ना नव्हे बद्ध। जेथ नेणिजती रस गंधा। जें भलतयांही सिद्ध। आठवलेंचि फावे
॥१९६॥ जयाची गोठीचि ऐकतखेंवो। आघवा संसारु होय वावों। बळिया नित्यता लागे येवों। आपणपेयां
॥१९७॥ जन्ममृत्यूची भाखा। हारपोनि जाय निःशेखा। आंत बाहेरी महासुखा। वाढोंचि लागे ॥१९८॥
मग दैवगत्या जरी सेविजे। तरी तें आपणचि होऊनि ठाकिजे। तें तुज देतां चित्त माझें। पुरें म्हणों न

शके ॥१९॥ तंव तुझे नामचि जी आम्हां आवडे। वरि भेटी होय आणि जवळिक जोडे। पाठीं गोठी सांगसी सुरवाडें। आनंदाचेनि ॥२००॥ आतां हें सुख कायिसयासारिखें। कांहीं निर्वचेना मज परितोखें। तरि येतुलें जाणें जें येणें मुखें। पुनरुक्तही हो ॥१॥ हां गा सूर्य काय शिळा। आग्नि म्हणों येत आहे वोंविळा। कां नित्य वाहातया गंगाजळा। पारसेपण असे ॥२॥ तुवां स्वमुखें जें बोलिलें। हें आम्हीं नादासि रूप देखिलें। आजि चंदनतरुचीं फुलें। तुरंबीत आहों मां ॥३॥ या पार्थाचिया बोला। सर्वांगें कृष्ण डोलला। म्हणे भक्तिज्ञानासि जाहला। आगरु हा ॥४॥ ऐसा पतिकराचिया तोषाआंतु। प्रेमाचा वेग उचंबळतु। तो सायासें सांवरुनि अनंतु। काय बोले ॥५॥

श्रीभगवानुवाच : हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः। प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१९॥
मी पितामहाचा पिता। हें आठवितांही नाठवे चित्ता। कीं म्हणतसे बा पांडुसुता। भलें केलें ॥६॥ अर्जुनातें बा म्हणे एथ कांहीं। आम्हां विस्मो करावया कारण नाहीं। अंगें तो लेंकरुं काई। नव्हेचि नंदाचें ॥७॥ परि प्रस्तुत ऐसें असो। हें करवी आवडीचा आर्तिसो। मग म्हणे आइकें सांगतसों। धनुर्धरा ॥८॥ तरि तुवां पुसलिया विभूती। तयांचें अपारपण सुभद्रापती। ज्या माझियाचि परि माझिये मती। आकळती ना ॥९॥ अंगींचिया रोमा किती। जयाचिया तयासि न गणवती। तैसिया माझिया विभूती। असंख्य मज ॥२१०॥ एन्ही तरी मी कैसा केवढा। म्हणोनि आपणपयाही नव्हेचि

फुडा। यालागीं प्रधाना जिया रुढा। तिया विभूती आइकें ॥११॥ जिया जाणितलियासाठीं। आघवीया जाणितलिया होती किरीटी। जेंसें बीज आलिया मुठीं। तरुचि आला होय ॥१२॥ कां उद्यान हाता चढिलें। तरी आपैसीं सांपडलीं फळें फुलें। तेवीं देखिलिया जिया देखवलें। विश्व सकळ ॥१३॥ एन्ही साचचि गा धनुर्धरा। नाहीं शेवटु माझिया विस्तारा। पें गगना ऐशिया अपारा। मजमार्जी लपणें ॥१४॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥
आइकें कुटिलालकमस्तका। धनुर्वेदत्र्यंबका। मी आत्मा असें एकैका। भूतमात्राचां ठायीं ॥१५॥ आंतुलीकडे मीचि यांचा अंतःकरणीं। भूतांबाहेरी माझीच गंवसणी। आदि मी निर्वाणीं। मध्यही मीचि ॥१६॥ जैसें मेघां या तळीं वरी। एक आकाशचि आंत बाहेरी। आणि आकाशींचि जाले अवधारीं। असणेंही आकाशीं ॥१७॥ पाठीं लया जे वेळीं जाती। ते वेळीं आकाशचि होऊनि ठाती। तेवीं आदि स्थिती अंतगती। भूतांसि मी ॥१८॥ ऐसें बहुवस आणि व्यापकपण। माझे विभूतियोगें जाण। तरी जीवचि करुनि श्रवण। आइकोनि आइक ॥१९॥ याहीवरी त्या विभूती। सांगणें ठेलें तुजप्रति। सांगेन म्हणितलें तुज प्रीती। त्या प्रधाना आइकें ॥२२०॥

आदित्यानामहं विष्णुज्योतिषां रविरंशुमान्। मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥
हें बोलोनि तो कृपावंतु। म्हणे विष्णु मी आदित्यांआंतु। रवी मी रश्मिवंतु। सुप्रभांमार्जी ॥२१॥

मरुद्गणांच्या वर्गीं। मरीचि म्हणे मी शाङ्गीं। चंद्र मी गगनरंगीं। तारांमार्जीं ॥२२॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः। इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

वेदांआंतु सामवेदु। तो मी म्हणे गोविंदु। देवांमार्जीं मरुद्वंधु। महेंद्र तो मी ॥२३॥ इंद्रियांआंतु अकरावें। मन तें मी हें जाणावें। भूतांमार्जीं स्वभावे। चेतना ते मी ॥२४॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वितेशो यक्षरक्षसाम्। वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

अशेषांही रुद्रांमाझारीं। शंकर जो मदनारी। तो मी येथ न धरीं। भ्रांति कांहीं ॥२५॥ यक्षरक्षोगणांआंतु। शंभूचा सखा जो धनवंतु। तो कुबेरु मी हें अनंतु। म्हणता जाहला ॥२६॥ मग आठांही वसूंमाझारीं। पावकु तो मीं अवधारीं। शिखराथिलियां सर्वोपरी। मेरु तो मी ॥२७॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्। सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

जो स्वर्गसिंहासना सावावो। सर्वज्ञते आदीचा ठावो। तो पुरोहितांमार्जीं रावो। बृहस्पती मी ॥२८॥ त्रिभुवनींचिया सेनापतीं। आंत स्कंदु तो मी महामती। जो हरवीर्ये आग्निसंगती। कृत्तिकाआंतु जाहला ॥२९॥ सकळिकां सरोवरांसी। माझारि समुद्र तो मी जळराशी। महर्षींआंतु तपोराशी। भृगु तो मी ॥३०॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्। यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

अशेषांही वाचा। आंतु नडनाच सत्याचा। तें अक्षर एक मी वैकुंठींचा। वेल्हाळु म्हणे ॥३१॥ समस्तांही यज्ञांचां पैकीं। जपयज्ञु तो मी ये लोकीं। जो कर्मत्यागें प्रणवादिकीं। निफजविजे ॥३२॥ नामजपयज्ञु तो परमा बाधूं न शके स्नानादि कर्म। नामें पावन धर्माधर्म। नाम परब्रह्म वेदार्थें ॥३३॥ स्थावरां गिरीवरां आंतु। पुण्यपुंज जो हिमवंतु। तो मी म्हणे कांतु। लक्ष्मीयेचा ॥३४॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः। गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥२६॥

कल्पद्रुम हन परिजातु। गुणें चंदनुही वाड विख्यातु। तरि ययां वृक्षजातां आंतु। अश्वत्थु तो मी ॥३५॥ देवर्षीं आंतु पांडवा। नारदु तो मी जाणावा। चित्ररथु मी गंधर्वा। सकळिकांमार्जीं ॥३६॥ ययां अशेषांही सिद्धां। मार्जीं कपिलाचार्यु मी प्रबुद्धा। तुरंगजातां प्रसिद्धां। आंत उच्चैःश्रवा मी ॥३७॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्। ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

राजभूषण गजांआंतु। अर्जुना मी गा ऐरावतु। पयोराशी सुरमथितु। अमृतांशु तो मी ॥३८॥ ययां नरांमार्जीं राजा। तो विभूतिविशेष माझा। जयातें सकळ लोकप्रजा। होऊनि सेविती ॥३९॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक। प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

पैं आघवेयां हातियेरां। आंत वज्र तें मी धनुर्धरा। जें शतमखोत्तीर्णकरा। आरुढोनि असे ॥२४०॥ धेनूंमध्ये कामधेनु। ते मी म्हणे विष्ठाक्सेनु। जन्मवितयांआंत मदनु। तो मी जाणें ॥४१॥

सर्पकुळाआंतु आर्धिष्ठाता। वासुकी गा मी कुंतीसुता। नागांमार्जीं समस्तां। अनंतु तो मी ॥४२॥

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्। पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

अगा यादसांआंतु। जो पश्चिमप्रमदेचा कांतु। तो वरुण मी हें अनंतु। सांगत असे ॥४३॥ आणि पितृगणां समस्तां। मार्जीं अर्यमा जो पितृदेवता। तो मी हें तत्त्वतां। बोलत आहें ॥४४॥ जगाचीं शुभाशुभें लिहिती। प्राणियांचिया मानसांचा झाडा घेती। मग केलियानुरूप होती। भोगनियम जे ॥४५॥ तयां नियमितयांमार्जीं यमु। जो कर्मसाक्षी धर्मु। तो मी म्हणे रामु। रमापती ॥४६॥

प्रल्हादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्। मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥

अगा दैत्यांचियां कुळीं। प्रल्हादु तो मी न्याहाळीं। म्हणोनि दैत्यभावादिमेळीं। लिंपेचिना ॥४७॥ पैं कळितयांमार्जीं महाकाळु। तो मी म्हणे गोपाळु। श्वापदांआंतु शार्दूलु। तो मी जाण ॥४८॥ पक्षिजातीमाझारीं। गरुड तो मी अवधारीं। यालागीं जो पाठीवरी। वाहों शके मातें ॥४९॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्। झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जान्हवी ॥३१॥

पृथ्वीचिया पैसारा। मार्जीं घडी न लगतां धनुर्धरा। एकेचि उड्डाणें सातांहि सागरां। प्रदक्षिणा करी जो ॥२५०॥ तयां वहिलियां गतिमंतां। आंत पवनु तो मी पांडुसुता। शस्त्रधरां समस्तां। मार्जीं श्रीराम तो मी ॥५१॥ जेणें सांकडलिया धर्माचेन कैवारे। आपणपयां धनुष्य करुनि दुसरें। विजयलक्ष्मीये

एक मोहरें। केलें त्रेतीं ॥५२॥ पाठीं उभें ठाकूनि सुवेळीं। प्रतापलंकेश्वराचीं सिसाळीं। गगनीं उदो म्हणतया हस्तबळी। दिधलीं भूतां ॥५३॥ जेणें देवांचा मानु गिंवसिला। धर्मासि जीर्णोद्धारु केला। सूर्यवंशीं उदेला। सूर्य जो कां ॥५४॥ तो हतियेरुपरजितयांआंतु। रामचंद्र मी जानकीकांतु। मकर मी पुच्छवंतु। जळचरांमार्जीं ॥५५॥ पैं समस्तांही वोघां। मध्यें जे भगीरथें आणितां गंगा। जन्हूनें गिळिली मग जंघा। फाडूनि दिधली ॥५६॥ ते त्रिभुवनैकसरिता। जान्हवी मी पांडुसुता। जळप्रवाहां समस्तां। माझारीं जाणें ॥५७॥ ऐसेनि वेगळालां सृष्टीपैकीं। विभूती नाम सुतां एकेकी। सगळेन जन्मसहस्रें अवलोकीं। अर्ध्या नव्हती ॥५८॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन। अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२॥

जैसी अवधींचि नक्षत्रें वेंचावीं। ऐसी चाड उपजेल जें जीवीं। तें गगनाची बांधावी। लोथ जेवीं ॥५९॥ कां पृथ्वीये परमाणूंचा उगाणा घ्यावा। तरि भूगोलुचि काखे सुवावा। तैसा विस्तारु माझा पहावा। तरि जाणावें मातें ॥२६०॥ जैसें शाखांसी फूल फळा। एकिहेळां वेटाळूं म्हणिजे सकळा। तरि उपडुनियां मूळा। जेवीं हातीं घेपे ॥६१॥ तेवीं माझे विभूतिविशेष। जरी जाणों पाहिजेती अशेष। तरी स्वरूप एक निर्दोष। जाणिजे माझें ॥६२॥ एन्हवीं वेगळालिया विभूती। कायिेक परिससी किती। म्हणोनि एकिहेळां महामती। सर्व मी जाण ॥६३॥ मी आघवियेचि सृष्टी। आदिमध्यांतीं किरीटी। ओतप्रोत पटीं। तंतु जेवीं ॥६४॥ ऐसिया व्यापका मातें जें जाणावें। तें विभूतिभेदें काय करावें। परि

हे तुझी योग्यता नव्हे। म्हणोनि असो ॥६५॥ कां जे तुवां पुसिलिया विभूती। म्हणोनि तिया आईक
सुभद्रापती। तरी आतां विद्यामांजीं प्रस्तुती। अध्यात्मविद्या ते मी ॥६६॥ अगा बोलतयांचिया ठायीं।
वादु तो मी पाहीं। जो सकलशास्त्रसंमतें कहीं। सरेचिना ॥६७॥ जो निर्वचूं जातां वाढे। आइकिलियां
उत्प्रेक्षे सळु चढे। जयावरी बोलतयांचीं गोडें। बोलणीं होतीं ॥६८॥ ऐसा प्रतिपादनामाजीं वादु। तो
मी म्हणे गोविंदु। अक्षरांआंतु विशदु। अकारु तो मी ॥६९॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्दः सामासिकस्य च। अहमेवाक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः ॥३३॥

पें गा समासांमाझारीं। द्वंद तो मी अवधारीं। मशकालागोनि ब्रह्मावेरीं। ग्रासिता तो मी ॥२७०॥
मेरुमंदरादिकीं सर्वीं। सहित पृथ्वीतें विरवी। जो एकार्णवातेंही जिरवी। जेथिंचा तेथें ॥७१॥ जो
प्रळयतेजा देत मिठी। सगळिया पवनातें गिळी किरीटी। आकाश जयाचिया पोटीं। सामावलें ॥७२॥
ऐसा अपार जो काळु। तो मी म्हणे लक्ष्मीलीळु। मग पुढती सृष्टीचा मेळु। सृजिता तो मी ॥७३॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्। कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥३४॥

आणि सृजिलिया भूतांतें मीचि धरीं। सकळां जीवनही मीचि अवधारीं। शेखीं सर्वातें या संहारीं।
तेव्हां मृत्युही मीचि ॥७४॥ आतां स्त्रीगणांचां पैकीं। माझिया विभूती सात आणिकी। तिया ऐक
कवतिकीं। सांगिजतील ॥७५॥ तरी नीच नवी जे कीर्ति। अर्जुना ते माझी मूर्ती। आणि औदार्येसीं

जे संपत्ती। तेही मीचि जाणें ॥७६॥ आणि ते गा मी वाचा। जे सुखासनीं न्यायाचां। आरूढोनि
विवेकाचां। मार्गी चाले ॥७७॥ देखिलेनि पदार्थें। जे आठवूनि दे मातें। ते स्मृतिही पें एथें। त्रिशुद्धी
मी ॥७८॥ पें स्वहिता अनुजायिनी। मेधा ते गा मी इये जनीं। धृती मी त्रिभुवनीं। क्षमा ते मी ॥७९॥
एवं नारींमाझारीं। या सातही शक्ति मीचि अवधारीं। ऐसें संसारगजकेसरी। म्हणता जाहला ॥२८०॥

बृहत् साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्। मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥

वेदराशीचिया सामा। आंत बृहत्साम जें प्रियोत्तमा। तें मी म्हणे रमा। प्राणेश्वरु ॥८१॥ गायत्री
छंद जें म्हणिजे। तें सकळा छंदांमाजि माझें। स्वरूप हें जाणिजे। निभ्रांत तुवां ॥८२॥ मासांआंत
मार्गशीरु। तो मी म्हणे शाङ्गधरु। ऋतूंमाजीं कुसुमाकरु। वसंतु तो मी ॥८३॥

द्युतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्। जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३६॥

छळितयां विंदाणा। माजीं जूं तें मी विचक्षणा। म्हणोनि चोहटां चोरी परि कवणा। निवारुं न ये
॥८४॥ अगा अशेषांही तेजसां। आंत तेज तें मी भरंवसा। विजयो मी कर्योदेशां। सकळांमाजीं
॥८५॥ जेणें चोखाळत दिसे न्याया। तो व्यवसायांत व्यवसाया। माझेंचि स्वरूप हें राया। सुरांचा म्हणे
॥८६॥ सत्त्वाथिलियां आंतु। सत्त्व मी म्हणे अनंतु। यादवामाजीं श्रीमंतु। तोचि तो मी ॥८७॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः। मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥३७॥

जो देवकीवसुदेवास्तव जाहला। कुमारीसाठीं गोकुळीं गेला। तो मी प्राणासकट पियाला। पूतनेतें

॥८८॥ नुघडतां बाळपणाची फुली। जेणें मियां अदानवी सृष्टि केली। करीं गिरि धरुनि उमाणिली।
 महेंद्रमहिमा ॥८९॥ कालिंदीचें हृदयशल्य फेडिलें। जेणें मियां जळत गोकुळ राखिलें। वासरुवांसाठीं
 लाविलें। विंरचीस पिसें ॥९०॥ प्रथमदशेचिये पहांटे। माजीं कंसाऐशीं अचाटे। महाधेंडीं अवचटे।
 लीळाचि नासिलीं ॥९१॥ हें काय कितीएक सांगावें। तुवांही देखिलें ऐकिलें असे आघवें। तरि
 यादवांमाजीं जाणावें। हेंचि स्वरूप माझें ॥९२॥ आणि सोमवंशीं तुम्हां पांडवां। माजीं अर्जुन तो मी
 जाणावा। म्हणोनि एकमेकांचिया प्रेमभावा। विघडु न पडे ॥९३॥ संन्यासी तुवां होऊनि जनीं।
 चोरुनि नेली माझी भगिनी। तन्ही विकल्पु नुपजे मनीं। मी तूं दोन्ही स्वरूप एक ॥९४॥ मुनींआंत
 व्यासदेवो। तो मी म्हणे यादवरावो। कवीश्वरांमाजीं धैर्या रावो। उशनाचार्य मी ॥९५॥

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्। मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

अगा दमितयांमाझारीं। आर्निवार दंडु तो मी अवधारीं। जो मुंगियेलागोनि ब्रह्मावेरीं। नियमित
 पावे ॥९६॥ पै सारासार निर्धारितयां। धर्मज्ञानाचा पक्षु धरितयां। सकळशास्त्रामाजीं ययां। नीतिशास्त्र
 तें मी ॥९७॥ आघवियाचि गूढां। आंतु मौन तें मी सुहाडा। म्हणोनि न बोलतयां पुढां। स्रष्टाही नेण
 होय ॥९८॥ अगा ज्ञानियांचां ठायीं। ज्ञान तें मी पाहीं। आतां असो हें ययां कांहीं। पार न देखों
 ॥९९॥

यच्चाऽपि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन। न तदस्ति विना यत्स्यान्मया मया भूतं चराचरम् ॥३९॥

पैं पर्जन्याचिया धारां। वरी लेख करवेल धनुर्धरा। कां पृथ्वीचिया तृणांकुरा। होईल ठी ॥३००॥
 पैं महोदधीचिया तरंगां। व्यवस्था धरुं नये जेवीं गा। तेवीं माझिया विशेष लिंगां। नाहीं मित्ती ॥१॥
 ऐशियाही सातपांच प्रधाना। विभूती सांगितलिया तुज अर्जुना। तो हा उद्देशु जो गा मना। आहाच
 गमला ॥२॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप। एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥४०॥

येरां विभूतिविस्तारांसि कांहीं। एथ सर्वथा लेख नाहीं। म्हणौनि परिससीं तूं काई। आम्ही सांगों
 किती ॥३॥ यालागीं एकिहेळं तुज। दाऊं आतां वर्म निज। सर्वभूतांकुरें बीज। विरूढत असे तें मी
 ॥४॥ म्हणोनि सानें थोर न म्हणावें। उंच नीच भाव सांडावे। एक मीचि ऐसें मानावें। वस्तुजातातें
 ॥५॥ तरी यावरी साधारण। आईक पां आणिकही खुण। तरी अर्जुना ते तूं जाण। विभूति माझी
 ॥६॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसंभवम् ॥४१॥

जेथ जेथ संपत्ति आणि दया। दोन्ही वसती आलिया असती ठाया। ते ते जाण धनंजया। विभूति
 माझी ॥७॥ अथवा एकलें एक बिंब गगनीं। तरी प्रभा फांके त्रिभुवनीं। तेवीं एकाकियाची सकळ जनीं।
 आज्ञा पाळिजे ॥८॥ तयांतें एकलें झणी म्हण। ते निर्धन या भाषा नेण। काय कामधेनूसवें सर्व

साहाना चालत असे ॥९॥ तियेतें जें जेधवां जो मागे। तें ते एकसरेंचि प्रसवों लागे। तेवीं विश्वविभव
तया अंगें। होऊनि आहाति ॥३१०॥ तयातें वोळखावया हेचि संज्ञा। जे जगें नमस्कारिजे आज्ञा।
ऐसें आथि ते जाण प्राज्ञा। अवतार माझे ॥११॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन। विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

आतां सामान्य विशेष। हें जाणणें एथ महादोष। कां जे मीचि एक अशेष। विश्व आहे म्हणोनि
॥१२॥ तरी आतां साधारण आणि चांगु। ऐसा कैसेनि पां कल्पावा विभागु। वायां आपुलियेचि मती
वंगु। भेदाचा लावावा ॥१३॥ एन्हवीं तरी तूप कासया घुसळावें। अमृत का रांधूनि अर्धे करावें। हा
गां वायूसि काय डावें। उजवें अंग आहे ॥१४॥ पैं सूर्यबिंबासि पोट पाठीं। पाहतां नासेल आपुली
दिठी। तेवीं माझां स्वरूपीं गोठी। सामान्यविशेषाची नाहीं ॥१५॥ आणि सिनाना विभूती। मज

* अपारातें मविसील किती। म्हणोनि किंबहुना सुभद्रापती। असो हें जाणणें ॥१६॥ आतां पें माझेनि *
 * एकें अंशें। हें जग व्यापिलें असे। यालागीं भेदु सांडुनि सरिसें। साम्यें भज ॥१७॥ ऐसें विबुधवनवसंतें। *
 * तेणे विरक्तांचेनि एकांतें। बोलिलें जेथ श्रीमंतें। श्रीकृष्णदेवें ॥१८॥ तेथ अर्जुन म्हणे स्वामी। येतुलें *
 * हें राभस्य बोलिलेती तुम्हीं। जे भेदु एक आणि आम्हीं। सांडावा एकीं ॥१९॥ हां हो सूर्य म्हणे काय *
 * जगातें। अंधारें दवडा कां परौतें। केवीं धसाळ म्हणो देवा तूंतें। तरी आर्थिक हा बोलु ॥३२०॥ तुझें *
 * नांवचि एक कोणही वेळे। जयांचिये मुखासि कां काना मिळे। तयांचिया हृदयातें सांडुनि पळे। भेदु जी *
 * साच ॥२१॥ तो तूं परब्रह्मचि असकें। मज दैवें दिधलासि हस्तोदकें। तरी आतां भेदु कायसा कें। *
 * देखावा कवणें ॥२२॥ जी चंद्रबिंबाचां गाभारां। रिगालियावरीही उबारा। परि राणेपणें शाड्गधरा। *
 * बोला हें तुम्हीं ॥२३॥ तेथ सावियाचि परितोषोनि देवें। अर्जुनातें आलिंगिलें जीवें। मग म्हणे तुवां *
 * न कोपावें। आमुचिया बोला ॥२४॥ आम्हीं तुज भेदाचिया वाहाणीं। सांगितली जे विभूतींची कहाणी। *
 * ते अभेदें काय अंतःकरणीं। मानिली कीं न मनें ॥२५॥ हेंचि पहावयालागीं। नावेक बोलिलों *
 * बाहेरिसवडिया भंगीं। तंव विभूती तुज चांगी। आलिया बोधा ॥२६॥ येथ अर्जुन म्हणे देवें। हें आपुलें *
 * आपण जाणावें। परि देखतसें विश्व आघवें। तुवां भरलें ॥२७॥ पें राया तो पांडुसुतु। ऐसिये प्रतीतीसि *
 * जाहला वरैतु। या संजयाचिया बोला निवांतु। धृतराष्ट्र राहे ॥२८॥ कीं संजयो दुखवलेनि अंतःकरणें। *

* म्हणतसे नवल नव्हे दैव दवडणें। हा जीवें धाडसा आहे मी म्हणे। तंव आंतुही आंधळा ॥२९॥ परि *
 * असो हे तो अर्जुनु। स्वहिताचा वाढवितसे मानु। कीं याहीवरी तया आनु। धिंवसा उपनला ॥३३०॥ *
 * म्हणे हेचि हृदयाआंतुली प्रतीती। बाहेरी अवतरो कां डोळ्यांप्रती। इये आर्तीचां पाउलीं मती। उठती *
 * जाहली ॥३१॥ मियां इहींच दोहीं डोळां। झोंबावें विश्वरूपा सकळा। एवढी हांव तो दैवाआगळा। *
 * म्हणऊनि करी ॥३२॥ आजि तो कल्पतरुची शाखा। म्हणोनि वांझोळें न लगती देखा। जें जें येईल *
 * तयाचिया मुखा। तें तें साच करीतसे येरु ॥३३॥ जो प्रन्हादाचिया बोला। विषाहीसकट आपण *
 * जाहला। तो सद्गुरु असे जोडला। किरीटीसी ॥३४॥ म्हणोनि विश्वरूप पुसावयालागीं। पार्थ रिगता *
 * होईल कवणें भंगीं। तें सांगेन पुढिलिये प्रसंगीं। ज्ञानदेव म्हणे निवृत्तीचा ॥३३५॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥

(श्लोक ४२; ओव्या ३३५)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय अकरावा

आतां यावरी एकादशीं। कथा आहे दोन्ही रसीं। जेथ पार्था विश्वरूपेंसीं। होईल भेटी ॥१॥ जेथ
शांताचिया घरा। अद्भुत आला आहे पाहुणेरा। आणि येरांहीं रसां पांतिकरां। जाहला मानु ॥२॥ अहो
वधुवरांचिये मिळणी। जैशीं वराडियांही लुगडीं लेणीं। तैसे देशियेचां सोकासनीं। मिरवले रस ॥३॥
परि शांताद्भुत बरवे। जे डोळियांचां अंजळीं घ्यावे। जैसे हरिहर प्रेमभावे। आले खेवा ॥४॥ नातरी
अंवसेचां दिवशीं। भेटलीं बिंबें दोनी जैशीं। तेवीं एकवळा रसीं। केला एथ ॥५॥ मीनले गंगेयमुनेचे
ओघ। तैसें रसां जाहलें प्रयाग। म्हणोनि सुस्नात होत जग। आघवें एथ ॥६॥ मार्जी गीता सरस्वती

गुप्त। आणि दोनी रस ते ओघ मूर्त। यालागीं त्रिवेणी हे उचित। फावली बापा ॥७॥ एथ श्रवणाचेनि
द्वारे। तीर्थी रिघतां सोपारें। ज्ञानदेव म्हणे दातारें। माझेनि केलें ॥८॥ तीरें संस्कृताचीं गहनं। तोडोनि
मन्हाटिया शब्दसोपानें। रचिलीं धर्मनिधानें। निवृत्तिदेवें ॥९॥ म्हणौनि भलतेणें एथ सद्भावें नाहावें।
प्रयागमाधव विश्वरूप पहावें। येतुलेनि संसारासि द्यावें। तिलोदक ॥१०॥ हें असो ऐसे सावयवा। जेथ
सासिन्नले आथी रसभावा। जे श्रवणसुखाची राणीवा। जोडली जगा ॥११॥ जेथ शांताद्भुत रोकडे।
आणि येरां रसां पडप जोडे। हें अल्पचि परी उघडें। कैवल्य जेथ ॥१२॥ तो हा अकरावा अध्यायो।
जो देवाचा आपणपें विसंवता ठावो। परि अर्जुन सदैवांचा रावो। जे एथही पावला ॥१३॥ एथ
अर्जुनचि काय म्हणो पातला। आजि आवडतयाही सुकाळु जाहला। जे गीतार्थु हा आला। मन्हाटिये
॥१४॥ याचिलागीं माझें। विनविलें तें आइकिजे। तरी अवधान दीजे। सज्जनीं तुम्हीं ॥१५॥ तेवींचि
तुम्हां संतांचिये सभे। ऐसी सलगी कीर करुं न लभे। परि मानावें जी तुम्हीं लोभें। अपत्या मज
॥१६॥ अहो पुंसा आपणचि पढविजे। मग पढे तरी माथा तुकिजे। कां करविले चोजें न रिझे। बाळका
माय ॥१७॥ तेवीं मी जें जें बोलें। तें प्रभु तुमचेंचि शिकविलें। म्हणोनि अवधारिजो आपुलें। आपण
देवा ॥१८॥ हें सारस्वताचें गोड। तुम्हींचि लाविलें जी झाडा। तरी आतां अवधानामृते वाडा। सिंपोनि
कीजो ॥१९॥ मग हें रसभावफुलीं फुलेल। नानार्थफळभारें फळा येईल। तुमचेनि धर्मे होईल। सुकाळ
जगा ॥२०॥ या बोला संत रिझले। म्हणती तोषलो गा भलें केलें। आतां सांगें जें बोलिलें। अर्जुन तेथ

* ॥२१॥ तंव निवृत्तिदास म्हणे। जी कृष्णार्जुनांचें बोलणें। मी प्राकृत काय सांगों जाणें। परि सांगवा *
 * तुम्ही ॥२२॥ अहो रानींचिया पालेखाइरा। नेवाणें करविजे लंकेश्वरा। एकला अर्जुन परी अक्षौहिणी *
 * अकरा। न जिणेची काई ॥२३॥ म्हणोनि समर्थ जें जें करी। तें न हो न ये चराचरी। तुम्ही संत *
 * तयापरी। बोलवा मातें ॥२४॥ आतां बोलिजतसे आइका। हा गीताभाव निका। जो वैकुंठनायका। *
 * मुखौनि निघाला ॥२५॥ बाप बाप ग्रंथ गीता। जो वेदीं प्रतिपाद्य देवता। तो श्रीकृष्ण वक्ता। जिये *
 * ग्रंथीं ॥२६॥ तेथिंचें गौरव कैसें वानावें। जें शंभूचिये मती नागवे। तें आतां नमस्कारिजे जीवें भावें। *
 * हेंचि भलें ॥२७॥ मग आइका तो किरीटी। घालूनि विश्वरूपीं दिठी। पहिली कैसी गोठी। करिता *
 * जाहला ॥२८॥ हें सर्वही सर्वेश्वर। ऐसा प्रतीतिगत जो पतिकर। तो बाहेरी होआवा गोचर। *
 * लोचनासी ॥२९॥ हे जिवाआंतुली चाड। परि देवासि सांगतां सांकड। कां जे विश्वरूप गूढ। कैसेनि *
 * पुसावें ॥३०॥ म्हणे मागां कवणीं कहीं। जें पढियंतेनें पुसिलें नाहीं। सहसा कैसें काई। सांगा म्हणों *
 * ॥३१॥ मी जरी सलगीचा चांगु। तरी काय आइसीहूनि अंतरंगु। परि तेही हा प्रसंगु। बिहाली पुसों *
 * ॥३२॥ माझी आवडे तैसी सेवा जाहली। तरि काय होईल गरुडाचिया येतुली। परि तोही हे बोली। *
 * करीचिना ॥३३॥ मी काय सनकादिकांहूनि जवळां। परि तयाही नागवेचि हा चाळा। मी आवडेन *
 * काय प्रेमळां। गोकुळींचिया ऐसा ॥३४॥ तयांतेंही लेंकुरपणें झकविलें। एकाचे गर्भवासही साहिले। *

* परि विश्वरूप हें राहविलें। न दावीच कवणा ॥३५॥ हा ठायवरी गुज। याचिये अंतरींचें हें निज। केविं *
 * उराउरी मज। पुसों ये पां ॥३६॥ आणि न पुसेंचि जरी म्हणें। तरी विश्वरूप देखिलियाविणें। सुख *
 * नोहेचि परि जिणें। तेंही विपायें ॥३७॥ म्हणोनि आतां पुसों अळुमाळसें। मग करूं देवा ठाके तैसें। *
 * येणे प्रवर्तला साध्वसें। पार्थु बोलों ॥३८॥ परि तेंचि ऐसेनि भावें। जें एका दों उत्तरांसवें। दावी *
 * विश्वरूप आघवें। झाडा देउनी ॥३९॥ अहो वांसरूं देखिलियाचि साठीं। धेनु खडबडोनि मोहें उठी। *
 * मग स्तनामुखाचिये भेटी। काय पान्हा न ये ॥४०॥ पाहा पां तयां पांडवाचेनि नावें। जो कृष्ण रानींही *
 * प्रतिपाळूं धांवें। तयातें अर्जुनें जंव पुसावें। तंव साहील काई ॥४१॥ तो सहजेंचि स्नेहाचें अवतरण। *
 * आणि येरु स्नेहा घातलें आहे माजवण। ऐसिये मिळणी वेगळेपण। उरे हेंचि बहु ॥४२॥ म्हणोनि *
 * अर्जुनाचिया बोलासरिसा। देव विश्वरूप होईल आपैसा। तोचि पहिला प्रसंगु ऐसा। ऐकिजो तरी *
 * ॥४३॥

* **अर्जुन उवाच :** मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥

* मग पार्थु देवातें म्हणे। जी तुम्हीं मजकारणें। वाच्य केलें न बोलणें। कृपानिधे ॥४४॥ जै महाभूतें *
 * ब्रह्मीं आटती। जीवमहदादींचे ठाय फिटती। तें जें देव होऊनि ठाकती। तें विसवणें शेफींचें ॥४५॥ *
 * होतें हृदयाचां परीवरीं। रोंविलें कृपणाचिये परी। शब्दब्रह्मासिही चोरी। जयाची केली ॥४६॥ तें *
 * तुम्हीं आजि आपुलें। मजपुढां हियें फोडिलें। जया अध्यात्मा वोवाळिलें। ऐश्वर्य हरें ॥४७॥ ते वस्तु *

* मज स्वामी। एकिहेळां दिधली तुम्हीं। हें बोलों तरि आम्ही। तुज पावोनि केंचे ॥४८॥ परि साचचि *
 * महामोहाचां पुरीं। बुडालेया देखोनि सीसवरी। तुवां आपणपें घालोनि श्रीहरी। मग काढिलें मातें *
 * ॥४९॥ एक तूवांचूनि कांहीं। विश्वीं दुजियाची भाष नाहीं। कीं आमुचें कर्म पाहीं। जे आम्ही आथी *
 * म्हणों ॥५०॥ मी जर्गीं एक अर्जुनु। ऐसा देहीं वाहें आर्भिमानु। आणि कौरवांतें इया स्वजनु। आपुला *
 * म्हणें ॥५१॥ याहीवरी यांतें मी मारीन। म्हणें तेणें पापें के रिगेन। ऐसें देखत होतों दुःस्वप्न। तों *
 * चेवविला प्रभु ॥५२॥ देवा गंधर्वनगरीची वस्ती। सोडुनि निघालों लक्ष्मीपती। होतों उदकाचिया *
 * आर्ती। रोहिणी पीत ॥५३॥ जी किरडूं तरी कापडाचें। परी लहरी येत होतिया साचें। ऐसे वायां *
 * मरतया जीवाचें। श्रेय तुवां घेतलें ॥५४॥ आपुलें प्रतिबिंब नेणतां। सिंह कुहां घालील देखोनि आतां। *
 * ऐसा धरिजे तेवीं अनंता। राखिलें मातें ॥५५॥ एन्हवीं माझा तरी येतुलेवरी। एथ निश्चय होता *
 * अवधारीं। जे आतांचि सातांही सागरीं। एकत्र मिळिजे ॥५६॥ हें युगचि आघवें बुडावें। वरि आकाशहि *
 * तुटोनि पडावें। परि झुंजणें न घडावें। गोत्रेशीं मज ॥५७॥ ऐसिया अहंकाराचिये वाढी। मियां *
 * आग्रहजळीं दिधली होती बुडी। चांगचि तूं एन्हवीं काढी। कवणु मातें ॥५८॥ नाथिलें आपणपें एक *
 * मानिलें। आणि नव्हतया नाम गोत्र ठेविलें। थोर पिसें होतें लागलें। परि राखिलें तुम्हीं ॥५९॥ मागां *
 * जळत काढिलों जोहरीं। तें तें देहासीच भय अवधारीं। आतां हे जोहरवाहर दुसरी। चैतन्यासकट *

* ॥६०॥ दुराग्रहें हिरण्याक्षें। माझी बुद्धिवसुंधरा सूदली काखे। मग मोहार्णवगवाक्षें। रिघोनि ठेला *
 * ॥६१॥ तेथ तुझेनि गोसावीपणें। एकवेळ बुद्धीचिया ठाया येणें। हें दुसरें वराह होणें। पडिलें तुज *
 * ॥६२॥ ऐसें अपार तुझें केलें। एकी वाचा काय मी बोलें। परि पांचही पालव मोकलिले। मजप्रती *
 * ॥६३॥ तें कांहीं न वचेचि वायां। भलें यश फावलें देवराया। जे साद्यंत माया। निरसिली माझी *
 * ॥६४॥ जी आनंदसरोवरींचीं कमळें। तैसे जे हे तुझे डोळे। आपुलिया प्रसादाचीं राउळें। जयालागीं *
 * करिती ॥६५॥ हां हो तयाही आणि मोहाची भेटी। हे कायसी पाबळी गोठी। केउती मृगजळाची वृष्टी। *
 * वडवानळेंसी ॥६६॥ आणि मी तंव दातारा। कृपेचां ये रिघोनि गाभारां। घेत आहें चारा। ब्रह्मरसाचा *
 * ॥६७॥ तेणें माझा जी मोह जाये। एथ विस्मो ाहीं आहे। तरी उद्धरलों कीं तुझे पाये। शिवतले *
 * आहाती ॥६८॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया। त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

* पें कमलायतडोळसा। सूर्यकोटितेजसा। मियां तुजपासोनि महेशा। परिसिलें आजि ॥६९॥ इयें *
 * भूतें जयापरी होती। अथवा लया हन जैसेनि जाती। ते मजपुढां प्रकृती। विवंचिली देवें ॥७०॥ *
 * आणि प्रकृती कीर उगाणा दिधला। परि पुरुषाचाही ठावो दाविला। जयाचा महिमा पांघरोनि *
 * जाहला। धडौता वेदु ॥७१॥ जी शब्दराशी वाढे जिये। कां धमऐशिया रत्नातें विये। ते एथिंचे प्रभेचे *
 * पाये। वोळगे म्हणोनि ॥७२॥ ऐसें अगाध माहात्म्य। जें सकळमार्गेंकगम्य। जें स्वात्मानुभवरम्य। तें *

* इयापरी दाविलें ॥७३॥ जैसा केरु फिटलिया आभाळीं। दिठी रिगे सूर्यमंडळीं। कां हातें सारुनि *
 * बाबुळी। जळ दाविजे ॥७४॥ नातर उकलतया सापाचे वेढे। जैसे चंदना खेंव देणें घडे। अथवा *
 * विवसी पळे मग चढे। निधान हातां ॥७५॥ तैसी प्रकृति हे आड होती। ते देवेंचि सारिली परौती। मग *
 * परतत्त्व माझिये मती। शेजार केलें ॥७६॥ म्हणोनि इयेविषयींचा मज देवा। भरंवसा कीर जाहला *
 * जीवा। परि आणीक एक हेवा। उपनला असे ॥७७॥ तो भिडां जरी म्हणों राहों। तरी आना कवणा *
 * पुसों जावों। काइ तूंवांचोनि ठावो। जाणत आहों आम्ही ॥७८॥ जळचरु जळाचा आभारु धरी। *
 * बाळक स्तनपानीं उपरोधु करी। तरी तया जिणयासी श्रीहरी। आन उपायो असे ॥७९॥ म्हणोनि *
 * भीडसांकडी न धरवे। जीवीं आवडे तेंही तुजपुढां बोलावें। तंव राहें म्हणितलें देवें। चाड सांगें ॥८०॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर। द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३॥

* मग बोलिला तो किरीटी। म्हणे तुम्हीं केली जे गोठी। तिया प्रतीतीची दिठी। निवाली माझी *
 * ॥८१॥ आतां जयाचेनि संकल्पें। हे लोकपरंपरा होय हारपे। जया ठायतें आपणपें। मी ऐसें म्हणसी *
 * ॥८२॥ तें मुद्दल स्वरूप तुझें। जेथूनि इयें द्विभुजें हन चतुर्भुजें। सुरकार्याचेनि व्याजें। घेवोंघेवों येसी *
 * ॥८३॥ पै जळशयनाचिया अवगणिया। कां मत्स्य कूर्म इया मिरवणिया। खेळु सरलिया तूं गुणिया। *
 * सांठविसी जेथ ॥८४॥ उपनिषदें जें गाती। योगिये हृदयीं रिगोनि पाहाती। जयातें सनकादिक

* आहाती। पोटाळुनियां ॥८५॥ ऐसें अगाध जें तुझें। विश्वरूप कानीं ऐकिजे। तें देखावया चित्त माझें। *
 * उतावीळ देवा ॥८६॥ देवें फेडूनियां साकड। लोभें पुसिली जरी चाड। तरि हेचि एकी वाड। आर्ती *
 * जी मज ॥८७॥ तुझें विश्वरूपपण आघवें। माझिये दिठीसि गोचर होआवें। ऐशी थोर आस जीवें। *
 * बांधोनि आहें ॥८८॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो। योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

* परि आणीक एक एथ शाड्गीं। तुज विश्वरूपातें देखावयालागीं। योग्यता माझां आंगीं। असे कीं *
 * नाहीं ॥८९॥ हें आपलें आपण मी नेणें। तें कां नेणसी जरी देव म्हणे। तरी सरोगु काय जाणे। निदान *
 * रोगाचें ॥९०॥ आणि जी आर्तीचेनि पडिभरें। आर्तु आपुली ठाकी पै विसरे। तान्हेला म्हणे न पुरे। *
 * समुद्र मज ॥९१॥ ऐशी सचाडपणाचिये भुली। न सांभाळवे समस्या आपुली। यालागीं योग्यता जेवीं *
 * माउली। बाळकाची जाणे ॥९२॥ तयापरी जनार्दना। विचारिजो माझी संभावना। मग विश्वरूपदर्शना। *
 * उपक्रम कीजे ॥९३॥ तरि तैसी ते कृपा करा। एन्हवीं नव्हे हें म्हणा अवधारा। वायां पंचमालापें *
 * बधिरा। सुख केउतें देणें ॥९४॥ एन्हवीं येकल्या बापियाचिया तृषे। मेघ जगापुरतें काय न वर्षें। परि *
 * जाहालीही वृष्टि उपखे। जन्ही खडकीं होय ॥९५॥ चकोरा चंद्रामृत फावलें। येरां आण वाहूनि काय *
 * वारिलें। परि डोळ्यांवीण पाहलें। वायां जाय ॥९६॥ म्हणोनि विश्वरूप तूं सहसा। दाविसी हा कीर *
 * भरंवसा। कां जे कडाडां आणि गहिंसां। माजीं नीच नवा तूं कीं ॥९७॥ तुझें औदार्य जाणों स्वतंत्रा

* देतां न म्हणसी पात्रापात्र। पें कैवल्यऐसें पवित्र। कीं वैरियांही दिधलें ॥९८॥ मोक्षु दुराराध्यु कीर *
 * होय। परि तोही आराधी तुझे पाय। म्हणोनि धाडिसी तेथ जाय। पाइकु जैसा ॥९९॥ तुवां *
 * सनकादिकांचेनि मानें। सायुज्यीं सौरसु केला पूतने। जे विषाचेनि स्तनपानें। मारुं आली ॥१००॥ *
 * हां गां राजसूयाचा सभासदीं। देखतां त्रिभुवनाची मांदी। कैसा शतधा दुर्वादीं। निस्तेजिलासी ॥१॥ *
 * ऐशिया अपराधिया शिशुपाळा। आपणपयां ठावो दिधला गोपाळा। आणि उत्तानचरणाचिया बाळा। *
 * काय ध्रुवपदीं चाड ॥२॥ तो वना आला याचिलागीं। जे बैसावें पितयाचां उत्संगीं। कीं तो *
 * चंद्रसूर्यादिकांपरिस जगीं। श्लाघ्यु केला ॥३॥ ऐसा वनवासियां सकळां। देता एकचि तूं धसाळा। *
 * पुत्रा आळावितां अजामिळा। आपणपें देसी ॥४॥ जेणें उरीं हाणितलासि पांपरा। तयाचा चरणु *
 * वाहासी दातारा। अझुनि वैरियांचिया कलेवरा। विसंबसीना ॥५॥ ऐसा अपकारियां तुझा उपकारु। *
 * तूं अपात्रींही परि उदारु। दान मागेनि दारवंटेकरु। जाहलासी बळीचा ॥६॥ तूंतें आराधी ना आयके। *
 * होती पुंसा बोलावित कौतुकें। तिये वैकुंठीं तुवां गणिके। सुरवाडु केला ॥७॥ ऐसीं पाहुनि वायाणीं *
 * मिषें। लागलासी आपणपें देवों वानिवसें। तो तूं कां अनारिसें। मजलागीं करिसी ॥८॥ हां गा *
 * दुभतयाचेनि पवाडें। जे जगाचें फेडी सांकडें। तिये कामधेनूचे पाडे। काय भुकेले ठाती ॥९॥ म्हणोनि *
 * मियां जें विनविलें कांहीं। तें देव न दाखविती हें कीर नाहीं। परि देखावयालागीं देई। पात्रता मज *

* ॥११०॥ तुझें विश्वरूप आकळे। ऐसें जरी जाणसी माझे डोळे। तरि आर्तीचे डोहळे। पुरवीं देवा *
 * ॥११॥ ऐसी ठायेंठावो विनंती। जंव करुं सरैल सुभद्रापती। तंव तया षड्गुणचक्रवर्ती। साहवेचिना *
 * ॥१२॥ तो कृपापीयूषसजळु। आणि येरु जवळां आला वर्षाकाळु। नाना कृष्ण कोकिलु। अर्जुन वसंतु *
 * ॥१३॥ नातरी चंद्रबिंब वाटोळें। देखोनि क्षीरसागर उचंबळे। तैसा दुणेंही वरी प्रेमबळें। उल्लसितु *
 * जाहला ॥१४॥ मग तिये प्रसन्नतेचेनि आटोपें। गाजोनि म्हणितलें सकृपें। पार्था देख देख उमपें। *
 * स्वरूपें माझीं ॥१५॥ *

* **श्रीभगवानुवाच :** पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः। नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥ *
 * एकचि विश्वरूप देखावें। ऐसा मनोरथु केला पांडवें। कीं विश्वरूपमय आघवें। करुनि घातलें *
 * ॥१६॥ बाप उदार देवो अपरिमितु। याचक स्वेच्छा सदोदितु। असे सहस्रवरी देतु। सर्वस्व आपुलें *
 * ॥१७॥ अहो शेषाचेहि डोळे चोरिले। वेद जयालागीं झकविले। लक्ष्मीयेही परि राहिलें। जिव्हार जें *
 * ॥१८॥ तें आतां प्रगटुनी अनेकधा। करीत विश्वरूपदर्शनाचा धांदा। बाप भाग्या अगाधा। पार्थाचिया *
 * ॥१९॥ जो जागता स्वप्नावस्थे जाये। तो जेवीं स्वप्नींचें आघवें होये। तेवीं अनंत ब्रह्मकटाह आहे। *
 * आपणचि जाहला ॥१२०॥ तेथिंची सहसा मुद्रा सोडिली। आणि स्थूल दृष्टीची जवनिका फाडिली। *
 * किंबहुना उघडिली। योगऋद्धी ॥२१॥ परि हा हें देखेल कीं नाहीं। ऐसी सेचि न करी कांहीं। एकसरां *
 * म्हणतसे पाहीं। स्नेहातुर ॥२२॥ अर्जुना तुवां एक दावा म्हणितलें। आणि तेंचि दावूं तरि काय *

* दाविलें। आतां देखें आघवें भरिलें। माझांचि रूपीं ॥२३॥ एकें कृशें ऐं स्थूळें। एकें न्हस्वें एकें विशाळें।
 * पृथुतरें सरळें। अप्रातें एकें ॥२४॥ एकें अनावरें प्रांजळें। सव्यापारें एकें निश्चळें। उदासीनें स्नेहाळें।
 * तीव्रें एकें ॥२५॥ एकें घूर्णितें सावधें। असलगें एकें अगाधें। एकें उदारें आर्तिबद्धें। क्रुद्धें एकें ॥२६॥
 * एकें संते सदामदें। स्तब्धें एकें सानदें। गर्जितें निःशब्दें। सौम्यें एकें ॥२७॥ एकें साभिलाषें विरक्तें।
 * उन्निद्रितें एकें निद्रितें। परितुष्टें एकें आर्तें। प्रसन्नें एकें ॥२८॥ एकें अशस्त्रें सशस्त्रें। एकें रौद्रें
 * आर्तिमित्रें। भयानकें एकें पवित्रें। लयस्थें एकें ॥२९॥ एकें जनलीलाविलासें। एकें पालनशीलें लालसें।
 * एकें संहारकें सावेशें। साक्षिभूतें एकें ॥१३०॥ एवं नानाविधें परि बहुवसें। आणि दिव्यतेजप्रकाशें।
 * तेवींचि एकएकाऐसे। वर्णेही नव्हे ॥३१॥ एकें तातलें साडेपंधरें। तैसीं कपिलवर्णे अपारें। एकें सरागें
 * जैसें सेंदुरें। डवरलें नभ ॥३२॥ एकें सावियाचि चुळुकीं। जैसा ब्रह्मकटाह खचिलें माणिकीं। एकें
 * अरुणोदयासारिखा। कुंकुमवर्णे ॥३३॥ एकें शुद्धस्फटिकसोज्ज्वळें। एकें इंद्रनीळसुनीळें। एकें
 * अंजनाचलसकाळें। रक्तवर्णे एकें ॥३४॥ एकें लसत्कांचनसम पिवळीं। एकें नवजलदश्यामळीं। एकें
 * चांपेगौरीं केवळीं। हरितें एकें ॥३५॥ एकें तप्तताम्रतांबडीं। एकें श्वेतचंद्र चोखडीं। ऐसीं नानावर्णे
 * रूपडीं। देख माझीं ॥३६॥ हे जैसें कां आनान वर्ण। तैसें आकृतींही अनारिसेपण। लाजा कंदर्प
 * रिघाला शरणा। तैसें सुंदरें एकें ॥३७॥ एकें आर्तिलावण्यसाकारें। एकें स्निग्धवपुमनोहरें। शृंगारश्रियेचीं

* भांडारें। उघडिलीं जैसीं ॥३८॥ एकें पीनावयव मांसाळें। एकें शुष्कें आर्तिविक्राळें। एकें दीर्घकटें
 * विताळें। विकटें एकें ॥३९॥ एवं नानाविधाकृती। इयां पाहतां पारु नाहीं सुभद्रापती। ययांच्या
 * एकेकीं अंगप्रांतीं। देख पां जग ॥१४०॥

पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा। बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥

* जेथ उन्मीलन होत आहे दिठी। तेथ पसरती आदित्यांचिया सृष्टी। पुढती निमीलनीं मिठी। देत
 * आहाती ॥४१॥ वदनींचिया वाफेसवें। होत ज्वाळामय आघवें। जेथ पावकादिक पावे। समूह वसूंचें
 * ॥४२॥ आणि भूलतांचे शेवट। कोपें मिळों पाहती एकवाट। तेथ रुद्रगणांचे संघाट। अवतरत देखें
 * ॥४३॥ पै सौम्यतेचां वोलावां। मिती नेणिजे आर्शिनौदेवां। श्रोत्रीं होती पांडवा। अनेक वायु ॥४४॥
 * यापरी एकेकाचिये लीळे। जन्मती सुरसिद्धांचीं कुळें। ऐसीं अपारें आणि विशाळें। रूपें इयें पाहीं
 * ॥४५॥ जयांतें सांगावया वेद बोबडे। पहावया काळाचेंही आयुष्य थोडें। धातयाही परी न सांपडे।
 * ठाव जयांचा ॥४६॥ जयांतें देवत्रयी कहीं नायके। तियें इयें प्रत्यक्ष देख अनेकें। भोगीं आश्चर्याची
 * कवतिकें। महाऋद्धी ॥४७॥

इहैकस्थं जगत् कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्। मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

* इया मूर्तीचिया किरीटी। रोममूळीं देखें पां सृष्टी। सुरतरुतळवटीं। तृणांकुर जैसे ॥४८॥ आणि
 * वाताचेनि प्रकाशें। उडतां परमाणु दिसती जैसे। भ्रमत ब्रह्मकटाह तैसे। अवयवसंधीं ॥४९॥ एथ

* एकैकाचिया प्रदेशीं। विश्व देख विस्तारेंशीं। आणि विश्वाही परौतें मानसीं। जरी देखावें वर्ते ॥१५०॥ *
 * तरी तियेही विषयींचें कांहीं। एथ सर्वथा सांकडें नाहीं। सुखें आवडें तें माझां देहीं। देखसी तूं ॥१५१॥ *
 * ऐसें विश्वमूर्ती तेणें। बोलिलें कारुण्यपूर्णें। तंव देखत आहे कीं नाहीं न म्हणे। निवांतुचि येरु ॥१५२॥ *
 * एथ कां पां हा उगला। म्हणोनि कृष्णें जंव पाहिला। तंव आर्तीचें लेणें लेइला। तैसाचि आहे ॥१५३॥ *
 * मग म्हणे उत्कंठे वोहट न पडे। अझुनी सुखाची सोय न सांपडे। परि दाविलें तें फुडें। नाकळेचि यया ॥१५४॥ *
 * हें बोलोनि देवो हांसिले। हांसोनि देखणिया म्हणितलें। आम्हीं विश्वरूप तरी दाविलें। परि न *
 * देखसीच तूं ॥१५५॥ यया बोला येरें विचक्षणें। म्हणितलें हां जी कवणासि तें उणें। तुम्ही बकाकरवीं *
 * चांदिणें। चरऊं पहा मा ॥१५६॥ हां हो उटोनियां आरिसा। आंधळिया दाऊं बैसा। बहिरीयापुडें *
 * हृषीकेशा। गाणीव करा ॥१५७॥ मकरंदकणाचा चारा। जाणतां घालूनि दर्दुरा। वायां धाडा शाड्गधरा। *
 * कोपा कवणा ॥१५८॥ जें अर्तीद्रिय म्हणोनि व्यवस्थिलें। केवळ ज्ञानदृष्टीचिया विभागा फिटलें। तें *
 * तुम्हीं चर्मचक्षूपुडें सूदलें। मी कैसेनि देखों ॥१५९॥ परि हें तुमचें उणें न बोलावें। मीचि साहें तेंचि *
 * बरवें। एथ आथि म्हणितलें देवें। मानुं बापा ॥१६०॥ साच स्वरूप जरी आम्हीं दावावें। तरी आधीं *
 * देखावया सामर्थ्य कीं द्यावें। परि बोलत प्रेमभावें। धसाळ गेलों ॥१६१॥ काय जाहलें न वाहतां भुई *
 * पेरिजे। तरी तो वेळु विलया जाइजे। तरी आतां माझें निजरूप देखिजे। ते दृष्टी देवों तुज ॥१६२॥ *

* न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥ *
 * मग तिया दृष्टी पांडवा। आमुचा ऐश्वर्ययोगु आघवा। देखोनियां अनुभवा। माजिवडा करीं ॥१६३॥ *
 * ऐसें तेणें वेदांतवेद्यें। सकळलोकआद्यें। बोलिलें आराध्यें। जगाचेनि ॥१६४॥ *
 * **संजय उवाच :** एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः। दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥ *
 * पैं कौरवकुलचक्रवर्ती। मज हाचि विस्मयो पुढतपुढती। जे श्रियेहूनि त्रिजगतीं। सदैव असे *
 * कवणी ॥१६५॥ ना तरी खुणेचें वानावयालागीं। श्रुतीवांचूनि दावा पां जगीं। ना सेवकपण तरी अंगीं। *
 * शेषाचांचि आथि ॥१६६॥ हां हो जयाचेनि सोसें। शिणत आठही पाहार योगी जैसे। अनुसरले *
 * गरुडाऐसे। कवण आहे ॥१६७॥ परि तें आघवेंचि एकीकडे ठेलें। सापें कृष्णसुख एकंदरें जाहलें। जिये *
 * दिउनि जन्मले। पांडव हे ॥१६८॥ परि पांचांही आंतु अर्जुना। कृष्ण सावियाचि जाहला अधीना। *
 * कामुक कां जैसा अंगना। आपैता कीजे ॥१६९॥ पढविलें पाखिरुं ऐसें न बोले। यापरी क्रीडामृगही *
 * तैसा न चले। कैसें दैव एथें सुरवाडलें। तें जाणों न ये ॥१७०॥ आजि परब्रह्म हें सगळें। भोगावया *
 * सदैव याचेचि डोळे। कैसे वाचेचे हन लळे। पाळीत असे ॥१७१॥ हा कोपे कीं निवांतु साहे। हा रुसे *
 * तरी बुझावीत जाये। नवल पिसें लागलें आहे। पार्थाचें देवा ॥१७२॥ एन्हवीं विषय जिणोनि जन्मले। *
 * जे शुकादिक दादुले। ते विषयोचि वानितां जाहले। भाट ययाचे ॥१७३॥ हा योगियांचें समाधिधन। कीं *
 * होऊनि ठेलें पार्थाअधीन। यालागीं विस्मयो माझें मन। करीतसे राया ॥१७४॥ तेवींचि संजय म्हणे *

* कायसा। विस्मयो एथें कौरवेशा। कृष्णें स्वीकारिजे तया ऐसा। भाग्योदय होय ॥७५॥ म्हणोनि तो *
 * देवांचा रावो। म्हणे पार्था ते तुज दृष्टि देवों। जया विश्वरूपाचा ठावो। देखसी तूं ॥७६॥ ऐसीं *
 * श्रीमुखौनि अक्षरें। निघती ना जंव एकसरें। तंव आविंचेचें आंधारें। जावोंचि लागे ॥७७॥ तें अक्षरें *
 * नव्हती देखा। ब्रह्मसाम्राज्यदीपिका। अर्जुनालागीं चित्कळिका। उजळलिया कृष्णें ॥७८॥ मग दिव्यचक्षु *
 * प्रगटला। तया ज्ञानदृष्टी पाटा फुटला। ययापरी दाविता जाहाला। ऐश्वर्य आपुलें ॥७९॥ हे अवतार *
 * जे सकळा। ते जिये समुद्रींचे कां कल्लोळ। विश्व हें मृगजळ। जया रश्मीस्तव दिसे ॥८०॥ जिये *
 * अनादिभूमिके निटे। चराचर हें चित्र उमटे। आपणपें वैकुंठें। दाविले तया ॥८१॥ मागां बाळपणीं येणें *
 * श्रीपती। जें एक वेळ खादली होती माती। तें कोपोनियां हातीं। यशोदा धरिला ॥८२॥ मग भेणें भेणें *
 * जैसें। मुखीं झाडा द्यावयाचेनि मिसें। चवदाही भुवनें सावकाशें। दाविलीं तिये ॥८३॥ ना तरी *
 * मधुवर्नीं ध्रुवासि केलें। जैसें कपोल शंखें शिवतलें। आणि वेदांचियेही मती ठेलें। तें लागला बोलों *
 * ॥८४॥ तैसा अनुग्रहो पें राया। श्रीहरी केला धनंजया। आतां कवणेकडेही माया। ऐसी भाष नेणे तो *
 * ॥८५॥ एकसरें ऐश्वर्यतेजें पाहलें। तया चमत्काराचें एकार्णव जाहलें। चित्त समार्जीं बुडोनि ठेलें। *
 * विस्मयाचां ॥८६॥ जैसा आब्रह्म पूर्णोदकीं। पव्हे मार्कंडेय एकाकी। तैसा विश्वरूपकौतुकीं। पार्थु *
 * लोळे ॥८७॥ म्हणे केवढें गगन एथ होतें। तें कवणें नेलें पां केउतें। तीं चराचरें महाभूतें। काय जाहलीं *

* ॥८८॥ दिशांचे ठावही हारपले। अधोर्ध्व काय नेणों जाहले। चेडलिया स्वप्न तैसे गेले। लोकाकार *
 * ॥८९॥ नाना सूर्यतेजप्रतापें। सचंद्र तारागण जैसें लोपे। तैसीं गिळिलीं विश्वरूपें। प्रपंचरचना ॥९०॥ *
 * तेव्हां मनासी मनपण न स्फुरे। बुद्धि आपणपें न सांवरे। इंद्रियांचे रश्मी माघारे। हृदयवरी भरले *
 * ॥९१॥ तेथ ताटस्थ्या ताटस्थ्य पडिलें। टकासी टक लागलें। जैसें मोहनास्त्र घातलें। विचारजातां *
 * ॥९२॥ तैसा विस्मितु पाहे कोडें। तंव पुढां होतें चतुर्भुज रूपडें। तेंचि नानारूप चहूंकडे। मांडोनि *
 * ठेलें ॥९३॥ जैसे वर्षाकाळींचें मेघौडे। कां महाप्रळयींचें तेज वाढे। तैसें आपणेनवीण कवणीकडे। *
 * नेदीचि उरों ॥९४॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्। अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥९०॥

* प्रथम स्वरूपसमाधाना। पावोनि ठेला अर्जुना। सर्वेचि उघडी लोचना। तंव विश्वरूप देखे ॥९५॥ *
 * इहींचि दोहीं डोळां। पाहावें विश्वरूपा सकळा। तोहि श्रीकृष्णें सोहळा। पुरविला ऐसा ॥९६॥ मग तेथ *
 * सैध देखे वदनें। जैसीं रमानायकाचीं राजभुवनें। नाना प्रगटलीं निधानें। लावण्यश्रियेचीं ॥९७॥ कीं *
 * आनंदाचीं वनें सासिन्नलीं। जैसी सौंदर्या राणीव जोडली। तैसीं मनोहरें देखिलीं। हरीचीं वक्त्रें तेणें *
 * ॥९८॥ तयांही मार्जीं एकैकें। सावियाचि भयानकें। काळरात्रीचीं कटकें। उठावलीं जैसीं ॥९९॥ कीं *
 * यें मृत्यूसीचि मुखें जाहलीं। हो कां जे भयाचीं दुर्गे पन्नासिलीं। कीं महाकुंडें उघडलीं। प्रळयानळाचीं *
 * ॥१००॥ तैसीं अद्भुतें भयासुरें। तेथ वदनें देखिलीं वीरें। आणिकें असाधारणें साळकारें। सौम्यें बहुतें

* ॥१॥ पैं ज्ञानदृष्टीचेनि अवलोकें। परि वदनांचा शेवटु न टके। मग लोचन ते कवतिकें। लागला पाहों *
 * ॥२॥ तंव नानावर्णे कमळवनें। कीं विकारिर्लीं तैसें अर्जुनें। डोळे देखिले पालिंगनें। आदित्यांचीं *
 * ॥३॥ तेथेंचि कृष्णमेघाचिया दाटी। मार्जीं कल्पांत विजूंचिया स्फुटी। तैसिया वन्हि पिंगळा दिठी। *
 * भ्रूभंगातळी ॥४॥ हें एकैक आश्चर्य पाहतां। तिये एकेचि रूपीं पांडुसुता। दर्शनाची अनेकता। प्रतिफलली *
 * ॥५॥ मग म्हणे चरण ते कवणेकडे। केउते मुकुट कें दोर्दडें। ऐसी वाढविताहे कोडें। चाड देखावयाची *
 * ॥६॥ तेथ भाग्यनिधि पार्था। कां विफलत्व होईल मनोरथा। काय पिनाकपाणीचां भातां। वायकांडीं *
 * आहाती ॥७॥ ना तरी चतुराननाचिये वाचे। आहाती लटिकिया अक्षरांचे सांचे। म्हणोनि साद्यंतपण *
 * अपारांचें। देखिलें तेणें ॥८॥ जयाची सोय वेदा नकळे। तयाचे सकळावयव एकेचि वेळे। अर्जुनाचे *
 * दोन्ही डोळे। भोगिते जाहले ॥९॥ चरणौनि मुकुटवरी। देखत विश्वरूपाची थोरी। जे नाना रत्न *
 * अलंकारीं। मिरवत असे ॥१०॥ परब्रह्म आपुलेनि आंगें। ल्यावया आपणचि जाहला अनेगें। तियें *
 * लेणीं मी सांगें। काइसयासारिखीं ॥११॥ जिये प्रभेचिये झळाळा। उजाळू चंद्रादित्यमंडळा। जे *
 * महातेजाचा जिव्हाळा। जेणें विश्व प्रगटे ॥१२॥ तो दिव्यतेज शृंगारु। कोणाचिये मतीसी होय *
 * गोचरु। देव आपणपेंचि लेइले ऐसें वीरु। देखत असे ॥१३॥ आपण आंग आपण अलंकार। आपण *
 * हात आपण हातियेर। आपण जीव आपण शरीर। देखे चराचर कोंदलें देवें ॥१४॥ मग तेथेंचि *

* ज्ञानाचां डोळां। पहात करपल्लवां जंव सरळा। तंव तोडित कल्पांतीचिया ज्वाळा। तैसीं शस्त्रें *
 * झळकत देखे ॥१५॥ जयांचिया किरणांचे निखरेपणें। नक्षत्रांचे होत फुटाणे। तेजें खिरडला वहि *
 * म्हणे। समुद्रीं रिघों ॥१६॥ मग काळकूटकल्लोळीं कवळिलें। नाना महाविजूंचे दांग उमटले। तैसे *
 * अपार कर देखिले। उदितायुधीं ॥१७॥

* दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्। सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

* कीं भेणें तेथूनि काढिली दिठी। मग कंठमुगुट पहातसे किरीटी। तंव सुरतरुंची सृष्टी। जयापासोनि *
 * का जाहली ॥१८॥ जियें महासिद्धींचीं मूळपीठें। शिणली कमळा जेथ वावटे। तैसीं कुसुमें आर्ति *
 * चोखटें। तुरंबिलीं देखिलीं ॥१९॥ मुगुटावरी स्तबका। ठायीं ठायीं पूजाबंध अनेका। कंठीं रुळताति *
 * अलौकिका। माळादंड ॥२०॥ स्वर्गे सूर्यतेज वेढिलें। जैसें पंधरेनें मेरुतें मढिलें। तैसें नितंबावरी *
 * गाढिलें। पीतांबरु झळके ॥२१॥ श्रीमहादेवो कापुरें उटिला। कां कैलासु पारदें डवरिला। नाना *
 * क्षीरोदकें पांघरविला। क्षीरार्णवो जैसा ॥२२॥ जैसी चंद्रमयाची घडी उपलविली। मग गगनाकरवीं *
 * बुंथी घालविली। तैसी चंदनपिंजरी देखिली। सर्वांगीं तेणें ॥२३॥ जेणें स्वप्रकाशा कांती चढे। *
 * ब्रह्मानंदाचा निदाघु मोडे। जयाचेनि सौरभ्यें जीवित जोडे। वेदवतीये ॥२४॥ जयाचे निर्लेप अनुलेपु *
 * करी। जे अनंगुही सर्वांगीं धरी। तया सुगंधाची थोरी। कवण वानी ॥२५॥ ऐसी एकैक शृंगारशोभा। *
 * पाहतां अर्जुन जातसे क्षोभा। तेवींचि देवो बैसला कीं उभा। का सेयांतु हें नेणवे ॥२६॥ बाहेर दिठी

उघडोनि पाहे। तरि आघवें मूर्तिमय देखतु जाये। मग आतां न पाहे म्हणोनि उगा राहे। तरी आंतुही
 तैसेंचि ॥२७॥ अनावरें मुखें समोर देखे। तयाभेणें पाठीमोरा जंव ठाके। तंव तयाहीकडे श्रीमुखें।
 करचरण तैसेंचि ॥२८॥ अहो पाहतां कीर प्रतिभासे। एथ कांहीं नवलावो काइ असे। परि न पाहतांही
 दिसे। चोज आइका ॥२९॥ कैसें अनुग्राहाचें करणें। पार्थाचें पाहणें आणि न पाहणें। तयाहीसकट
 नारायणें। व्यापूनि घातलें ॥३०॥ म्हणोनि आश्चर्याचां पुरीं एकीं। पडिला ठायेंठाव थडी ठाकी। तंव
 चमत्काराचिये आणिकीं। महार्णवीं पडे ॥३१॥ ऐसा अर्जुनु असाधारणें। आपुलिया दर्शनाचेनि
 विंदाणें। कवळूनि घेतला तेणें। अनंतरूपें ॥३२॥ तो विश्वतोमुख स्वभावे। आणि तेंचि दाखवावयालागीं
 पांडवें। प्रार्थिला आतां आघवें। होऊनि ठेला ॥३३॥ आणि दीपें कां सूर्यें प्रगटे। अथवा निमूटलिया
 देखावेंचि खुंटे। तैसी दिठी नव्हे जे वैकुंठें। दिधली आहे ॥३४॥ म्हणोनि किरीटीसि दोहीं परी। तें
 देखणें देखे आंधारीं। हें संजयो हस्तिनापुरीं। सांगतसे राया ॥३५॥ म्हणे किंबहुना अवधारिलें। पार्थें
 विश्वरूप देखिलें। नाना आभरणीं भरलें। विश्वतोमुख ॥३६॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता। यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

तिये अंगप्रभेचा देवा। नवलावो काइसयासारिखा सांगावा। कल्पांतीं एकुचि मेळावा।
 द्वादशादित्यांचा होय ॥३७॥ तैसे ते दिव्यसूर्य सहस्रवरी। जरी उदयजती कां एकेचि अवसरीं। तन्ही

तया तेजाची थोरी। उपमूं न ये ॥३८॥ आघवयाचि विजुंचा मेळावा कीजे। आणि प्रळयाग्नीची सर्व
 सामग्री आणिजे। तेवींचि दशकुही मेळविजे। महातेजांचा ॥३९॥ तन्ही तिये अंगप्रभेचेनि पाडें। हें
 तेज कांहीं कांहीं होईल थोडें। आणि तयाऐसें कीर चोखडें। त्रिशुद्धी नोहे ॥४०॥ ऐसें माहात्म या
 हरीचें सहज। फांकतसे सर्वांगींचें तेज। ते मुनिकृपा जी मज। दृष्ट जाहलें ॥४१॥

तत्रैकस्थं जगत् कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा। अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

आणि तिये विश्वरूपीं एकीकडे। जग आघवें आपुलेनि पवाडें। जैसें महोदधीमार्जीं बुडबुडे।
 सिनाने दिसती ॥४२॥ कां आकाशीं गंधर्वनगर। भूतळीं पिपीलिका बांधे घर। नाना मेरूवरी सपूरा।
 परमाणु बैसले ॥४३॥ विश्व आघवेंचि तयापरी। तया देव चक्रवर्तीचिया शरीरीं। अर्जुन तिये अवसरीं।
 देखता जाहला ॥४४॥ तेथ एक विश्व एक आपण। ऐसें अळुमाळ होतें जें दुर्जेपण। तेंही आटोनि गेलें
 अंतःकरण। विरालें सहसा ॥४५॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः। प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥

आंतुला महानंदा चेइरें जाहलें। बाहेरि गात्रांचें बळ हारपोनि गेलें। आपाद पां गुंतलें। पुलकांचलें
 ॥४६॥ वार्षिये प्रथमदशे। वोहळलया शैलाचें सर्वांग जैसें। विरुढे कोमलांकुरीं तैसे। रोमांच आले
 ॥४७॥ शिवतला चंद्रकरीं। सोमकांतु द्रावो धरी। तैसिया स्वेदकणिका शरीरीं। दाटलिया ॥४८॥
 मार्जीं सापडलेनि आर्लिउळें। जळावरी कमळकळिका जेवीं आंदोळे। तेंवीं आंतुलिया सुखोर्मीचेनि

बळें। बाहेरि कांपे ॥४९॥ कर्पूरकेळीचीं गर्भपुटे। उकलतां कापुराचेनि कोंदाटे। पुलिका गळती तेवीं
थेंबुटे। नेत्रोनि पडती ॥२५०॥ ऐसा सात्त्विकांही आठां भावां। परस्परें वर्ततसे हेवा। तेथ ब्रह्मानंदाची
जीवा। राणीव फावली ॥५१॥ उदयलेनि सुधाकरें। जैसा भरलाचि समुद्र भरे। तैसा वेळोवेळां
उर्मीभरें। उचंबळत असे ॥५२॥ तैसाचि तया सुखानुभवापाठीं। केला द्वैताचा सांभाळु दिठी। मग
उससौनि किरीटी। वास पाहिली ॥५३॥ तेथ बैठला होता जिया सवा। तियाचिकडे मस्तक खालविला
देवा। जोडूनि करसंपुट बरवा। बोलतु असे ॥५४॥

अर्जुन उवाच : पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वास्तथा भूतविशेषसंघान्।

ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

म्हणे जयजयाजी स्वामी। नवल कृपा केली तुम्हीं। जें हें विश्वरूप कीं आम्ही। प्राकृत देखों
॥५५॥ परि साचचि भलें केलें गोसाविया। मज परितोषु जाहला साविया। जी देखिलासि जो इया।
सृष्टीसी तूं आश्रयो ॥५६॥ देवा मंदराचेनि अंगलगे। ठायीं ठायीं श्वापदांचीं दांगें। तैसीं इयें तुझां देहीं
अनेगें। देखतसें भुवनें ॥५७॥ अहो आकाशाचिये खोळे। दिसती ग्रहगणांचीं कुळें। कां महावृक्षीं
आर्विसाळें। पक्षिजातीचीं ॥५८॥ तयापरी श्रीहरी। तुझां विश्वात्मकीं इये शरीरीं। स्वर्गु देखतसें
अवधारीं। सुरगणेंसीं ॥५९॥ प्रभु महाभूतांचें पंचक। येथ देखत आहें अनेक। आणि भूतग्राम एकेक।

भूतसृष्टीचे ॥२६०॥ जी सत्यलोक तुजमार्जी आहे। देखिला चतुराननु हा नोहे। आणि येरीकडे जंव
पाहें। तंव कैलासुही दिसे ॥६१॥ श्रीमहादेव भवानियेशीं। तुझां दिसतसे एके अंशीं। आणि तूंतेंहीं
गा हृषीकेशी। तुजमार्जी देखें ॥६२॥ पै कश्यपादि ऋषिकुळें। इयें तुझां स्वरूपीं सकळें। देखतसें
पाताळें। पन्नगेशीं ॥६३॥ किंबहुना त्रैलोक्यपती। तुझिया एकेकाचि अवयवाचिये भिंती। इयें चतुर्दशभुवनें
चित्राकृती। अंकुरलीं जाणों ॥६४॥ आणि तेथिंचे जे जे लोक। ते चित्ररचना जी अनेक। ऐसें देखतसें
अलोकिक। गांभीर्य तुझें ॥६५॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्॥

नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिति पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥१६॥

त्या दिव्यचक्षूंचेनि पैसें। चहूंकडे जंव पाहत असें। तंव दोर्दडीं जैसें। आकाश कोंभैलें ॥६६॥
तैसे एकचि निरंतर। देवा देखतुसें तुझे करा करीत आघवेचि व्यापार। एकी काळीं ॥६७॥ मग
महाशून्याचेनि पैसारे। उघडलीं ब्रह्मकटाहाचीं भांडारें। तैसीं देखतुसें अपारें। उदरें तुझीं ॥६८॥ जी
सहस्रशीर्षयाचें देखिलें। कोडीवरी होताति एकिवेळें। कीं परब्रह्मचि वदनफळें। मोडोनि आलें ॥६९॥
तैसीं वक्त्र जी जेउतीं तेउतीं। तुझीं देखतसें विश्वमूर्ती। आणि तयाचिपरी नेत्रपंक्ति। अनेका सेंघ
॥२७०॥ हें असो स्वर्ग पाताळा कीं भूमी दिशा अंतराळा हे विवक्षा ठेली सकळा मूर्तिमय देखतसें
॥७१॥ तुजवीण एकादियाकडे। परमाणुहि एतुला कोडें। अवकाशु पाहतसें परि न सांपडे। ऐसें

* व्यापिलें तुवां ॥७२॥ इहीं नाना भूतीं सहितें। जेतुलीं सांठविलीं होतीं महाभूतें। तेतुलाही पवाडु *
 * तुवां अनंतें। कोंदला देखतसें ॥७३॥ ऐसा कवणे ठायाहूर्नि तूं आलासी। एथ बैसलासि कीं उभा *
 * आहासी। आणि तूं कवणिये मायेचिये पोटीं होतासी। तुझें ठाण केवढें ॥७४॥ तुझें रूप वय कैसें। *
 * तुजपैलीकडे काय असे। तूं काइसयावरी आहासि ऐसें। पाहिलें मियां ॥७५॥ तंव देखिलें जी *
 * आघवेंचि। तरि आतां तुज देवा ठावो तूंचि। तूं कवणाचा नव्हेसि ऐसाचि। अनादि आयता ॥७६॥ *
 * तूं उभा ना बैठा। दिघडु ना खुजटा। तुज तळीं वरी वैकुंठा। तूंचि आहासी ॥७७॥ तूं रूपें आपणयांचि *
 * ऐसा। देवा तुझी तूंचि वयसा। पाठीं पोट परेशा। तुझें तूं गा ॥७८॥ किंबहुना आतां। तुज तूंचि आघवें *
 * अनंता। हें पुढत पुढती पाहतां। देखिलें मियां ॥७९॥ परि या तुझिया रूपाआंतु। जी उणीव एक असें *
 * देखतु। जे आदि मध्य अंतु। तिन्हीं नाहीं ॥८०॥ एन्हीं गिंवसिलें आघवां ठायीं। परि सोय न *
 * लाहेचि कहीं। म्हणोनि त्रिशुद्धी हे नाहीं। तिन्ही एथ ॥८१॥ एवं आदिमध्यांतरहिता। विश्वेश्वरा *
 * अपरिमिता। तूं देखिलासि जी तत्त्वता। विश्वरूपा ॥८२॥ तुज महामूर्तीचां आंगीं। उमटलिया पृथक् *
 * मूर्ती अनेगी। लेइलासि वानें परींचीं आंगीं। ऐसा आवडतु आहासी ॥८३॥ नाना पृथक् मूर्ती तिया *
 * द्रुमवेली। तुझां स्वरूपमहाचळीं। दिव्यालंकारफुलीं फळीं। सासिन्नलिया ॥८४॥ हो कां जे महोदधी *
 * तूं देवा। जाहलासि तरंगीं मूर्ती हेलावा। कीं तूं वृक्षु एक बरवा। मूर्तिफळीं फळलासि ॥८५॥ जी भूतीं *

* भूतळ मांडिलें। जैसें नक्षत्रीं गगन गुढलें। तैसें मूर्तिमय भरलें। तुझें देखतसें रूप ॥८६॥ जी एकेकीचां *
 * अंगप्रांतीं। होय जाय हें त्रिजगती। एवढियाही तुझां आंगीं मूर्ती। कीं रोमां जालिया ॥८७॥ ऐसा *
 * पवाडु मांडूनि विश्वाचा। तूं कवण पां एथ कैचा। हें पाहिलें तंव आमुचा। सारथी तोचि तूं ॥८८॥ तरी *
 * मज पाहतां मुकुंदा। तूं ऐसाचि व्यापकु सर्वदा। भक्तानुग्रहें तया मुग्धा। रूपातें धरिसी ॥८९॥ कैसें *
 * चहूं भुजांचें सांवळें। पाहतां वोल्हावती मन डोळे। खेंव देऊं जाइजे तरि आकळे। दोहींचि बाहीं *
 * ॥९०॥ ऐसी मूर्ति कोडिसवाणी कृपा। करुनि होसी विश्वरूपा। कीं आमुचियाचि दिठी सलेपा। जे *
 * सामान्यत्वे देखती ॥९१॥ तरी आतां दिठीचा विटाळु गेला। तुवां सहजें दिव्यचक्षू केला। म्हणोनि *
 * यथारूपें देखवला। महिमा तुझा ॥९२॥ परि मकरतुंडामागिलेकडे। होतासि तोचि तूं एवढें। रूप *
 * जाहलासि हें फुडें। वोळखिलें मियां ॥९३॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।

पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥९७॥

* नोहे तोचि हा शिरीं। मुकुट लेइलासि श्रीहरी। परि आतांचें तेज आणि थोरी। नवल कीं बहुवें *
 * ॥९४॥ तेंचि हें वरिलिये हातीं। चक्र परिजितया आयती। सांवरितासि विश्वमूर्ती। ते न मोडे खुण *
 * ॥९५॥ येरीकडे तेचि हे नोहे गदा। आणि तळिलिया दोनी भुजा निरायुधा। वागोरे सांवरावया *
 * गोविंदा। संसरिलिया ॥९६॥ आणि तेणेंचि वेगें सहसा। माझिया मनोरथासरिसा। जाहलासि विश्वरूपा *

विश्वेशा॥ म्हणोनि जाणें ॥९७॥ परि कायसें बा हें चोज। विस्मयो करावयाहि पवाडु नाहीं मज। चित्त
 होऊनि जात आहे निर्बुज। आश्चर्ये येणें ॥९८॥ हें एथ आथि कां येथ नाहीं। ऐसें श्वसोंही नये कांहीं।
 नवल अंगप्रभेची नवाई। कैसी कोंदली सेंघ ॥९९॥ एथचीही दिठी करपत। सूर्य खद्योतु तैसे
 हारपत। ऐसें तीव्रपण अद्भुत। तेजाचें यया ॥३००॥ हो कां जे महातेजाचां महार्णवीं। बुडोनि गेली
 सृष्टि आघवी। कीं युगांतविजुंचां पालवीं। झांकलें गगन ॥१॥ नातरी संहारतेजाचिया ज्वाळा।
 तोडोनि माचु बांधला अंतराळां। आतां दिव्य ज्ञानाचांहि डोळां। पाहवेना ॥२॥ उजाळु आर्धिकाधिक
 बहुवसु। धडाडीत आहे आर्तिदासु। पडत दिव्यचक्षूही त्रासु। न्याहाळितां ॥३॥ हो कां जे महाप्रळयींचा
 भडाडु। होता काळान्गिरुद्राचां ठायीं गूढ। तो तृतीयनयनाचा मढु। फुटला जैसा ॥४॥ तैसें पसरलेनि
 प्रकाशें। सेंघ पांचवनिया ज्वाळांचे वळसे। पडतां ब्रह्मकटाह कोळसे। होत आहाती ॥५॥ ऐसा
 अद्भुत तेजोराशी। जन्मा नवल म्यां देखिलासी। नाहीं व्याप्ती आणि कांतीसी। पारु जी तुझिये ॥६॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।

त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

देवा तूं अक्षरा। औटाविये मात्रेसि पर। श्रुती जयाचें घरा। गिंवसीत आहाती ॥७॥ जे आकाराचें
 आयतना। जें विश्वनिक्षेपैकनिधान। तें अव्यय तूं गहना। आर्विनाश जी ॥८॥ तूं धर्माचा वोलावा।

अनादिसिद्ध तूं नीच नवा। जाणें मी सदतिसावा। पुरुष विशेष तूं ॥९॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।

पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥१९॥

तूं आदिमध्यांतरहितु। स्वसामर्थ्ये तूं अनंतु। विश्वबाहु अपरिमितु। विश्वचरण तूं ॥३१०॥ पै
 चंद्रचंडांशुडोळां। दावितासि कोपप्रसाद लीळा। एकां रुससी तमाचां डोळां। एकां पाळितोसि कृपादृष्टी
 ॥११॥ जी एवंविधा तूतें। मी देखतसें हें निरुतें। पेटलें प्रळयाग्नीचें उजितें। तैसें वक्त्र हें तुझें
 ॥१२॥ वणिवेनि पेटले पर्वत। कवळूनि ज्वाळांचे उभड उठत। तैसी चाटीत दाढा दांत। जीभ लोळे
 ॥१३॥ इये वदनींचिया उबा। आणि जी सर्वांगकांतीचिया प्रभा। विश्व तातलें आर्ति क्षोभा। जात
 आहे ॥१४॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।

दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥२०॥

कां जे भूलोक पाताळ। पृथिवी हन अंतराळा। अथवा दशदिशा समाकुळा। दिशाचक्र ॥१५॥ तें
 आघवेंचि तुवां एके। भरलें देखत आहे कौतुके। परि गगनाहीसकट भयानके। आप्लविजे जेवीं
 ॥१६॥ ना तरी अद्भुतरसाचां कल्लोळीं। जाहली चवदाही भुवनांसि कडियाळी। तैसें आश्चर्यचि मग
 मी आकळीं। काय एक ॥१७॥ नावरे व्याप्ती हे असाधारण। न साहवे रूपाचें उग्रपण। सुख दूरी गेलें

* परी प्राण। विपायें धरी जग ॥१८॥ देवा देखोनियां तूतें। नेणों कैसें आलें भयाचें भरितें। आतां *
 * दुःखकल्लोळीं झळंबतें। तिन्ही भुवनें ॥१९॥ एन्हवीं तुज महात्मयाचें देखणें। तरि भयदुःखासि कां *
 * मेळवणें। परि हें सुख नव्हेचि जेणें गुणें। तें जाणवत आहे मज ॥३२०॥ जंव तुझें रूप नोहे दिटें। तंव *
 * जगासि संसारिक गोमटें। आतां देखिलासि तरी विषयविटें। उपनला त्रासु ॥३२१॥ तेवींचि तूतें *
 * देखिलियासाठीं। काइ सहसा तुज देवों येईल मिठी। आणि नेदीं तरी संकटीं। राहों केवीं ॥३२२॥ *
 * म्हणोनि मागां सरों तंव संसारु। आडवीत येतसे आर्निवारु। आणि पुढां तूं तंव अनावरु। न येसि *
 * घेवों ॥३२३॥ ऐसा माझारिली सांकडां। बापुड्या त्रैलोक्याचा होतसे हुरडा। हा ध्वनि जी फुडा। *
 * चोजवला मज ॥३२४॥ जैसा आरंबळला आगीं। समुद्रा ये निवावयालागीं। तंव कल्लोळपाणियाचां *
 * तरंगीं। आगळा बिहे ॥३२५॥ तैसें या जगासि जाहलें। तूतें देखोनि तळमळित ठेलें। यामार्जी पैल *
 * भले। ज्ञानसुरांचे मेळावे ॥३२६॥

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद् भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।

स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥३२७॥

* हे तुझेनि आंगिकें तेजें। जाळूनि सर्व कर्माचीं बीजें। मिळत तुजआंतु निजें। सद्भावेंसीं ॥३२७॥ *
 * आणिक एक साविया भयभीरु। सर्वस्वें धरुनि तुझी मोहरु। तुज प्रार्थिताति करु। जोडोनियां *

* ॥३२८॥ देवा आर्विद्यार्णवीं पडिलों। जी विषयवागुरें आंतुडलों। स्वर्गसंसाराचां सांकडलों। दोन्हीं *
 * भागीं ॥३२९॥ ऐसा आमुचें सोडवणें। तुजवांचोनि कीजेल कवणें। तुज शरण गा सर्वप्राणें। म्हणत *
 * देवा ॥३३०॥ आणि महर्षी अथवा सिद्ध। कां विद्याधरसमूह विविध। हे बोलत तुज स्वस्तिवादा *
 * करिती स्तवन ॥३३१॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।

गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥३३२॥

* हे रुद्रादित्यांचे मेळावे। वसु हन साध्य आघवे। आर्शिनौदेव विश्वेदेव विभवे। वायुही हे जी *
 * ॥३३२॥ अवधारा आग्नि हन गंधर्वा। पैल यक्षरक्षोगण सर्वा। जी महेंद्रमुख्य देवा कां सिद्धादिक ॥३३३॥ *
 * हे आघवेची आपुलां लोकीं। सोत्कंठित अवलोकीं। हे महामूर्ती दैविकी। पाहत आहाती ॥३३४॥मग *
 * पाहात पाहात प्रतिकर्षीं। विस्मित होऊनि अंतःकरणीं। करित निजमुकुटीं वोवाळणी। प्रभुजी तुज *
 * ॥३३५॥ ते जय जय घोष कलरवें। स्वर्ग गाजविताती आघवे। ठेवित ललाटावरी बरवे। करसंपुट *
 * ॥३३६॥ तिये विनयद्रुमाचिये आरवीं। सुरवाडली सात्त्विकांची माधवी। म्हणोनि करसंपुटपल्लवीं। तूं *
 * होतासि फळ ॥३३७॥ जी लोचना भाग्य उदेले। जीवा सुखाचें सुयाणें पाहलें। जे अगाध तुझें देखिलें। *
 * विश्वरूप इहीं ॥३३८॥ हें लोकव्यापक रूपडें। पाहतां देवांही चवकु पडे। याचें सन्मुखपण जोडे। *
 * भलतयाकडुनी ॥३३९॥

रूपं महत् ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरूपादम्।

बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

ऐसें एकचि परि विचित्रें। आणि भयानकें तेवींची बहु वक्त्रें। बहुलोचन हे सशस्त्रें। अनंतभुजा ॥३४०॥ हे अनंत चारु चरण। बहु उदर आणि नानावर्ण। कैसें प्रतिवदनीं मातलेपण। आवेशाचें ॥४१॥ हो कां जे महाकल्पाचां अंतीं। तवकलेनि यमें जेउततेउतीं। प्रळयाग्नीचीं उजिती। आंबुखिलीं जैसीं ॥४२॥ नातरी संहारत्रिपुरारीचीं यंत्रें। कीं प्रळयभैरवांचीं क्षेत्रें। नाना युगांतशक्तीचीं पात्रें। भूतखिचा वोढविलीं ॥४३॥ तैसीं जियेतियेकडे। तुझीं वक्त्रें जीं प्रचंडें। न समाती दरीमार्जीं सिंहाडें। तैसें दांत दिसती रागीट ॥४४॥ जैसें काळरात्रीचेनि अंधारें। उल्हासत निघती संहारखेचरें। तैसिया वदनीं प्रळयरुधिरें। काटलिया दाढा ॥४५॥ हें असो काळें अवंतिलें रण। कां सर्वसंहारें मातलें मरण। तैसें आर्तिभिगुळवाणेंपण। वदनीं तुझिये ॥४६॥ हे बापडी लोकसृष्टी। मोटकीये विपाइली दिठी। आणि दुःखकालिंदीचां तटीं। झाड होऊनि ठेला ॥४७॥ तुज महामृत्यूचां सागरीं। हे त्रैलोक्यजीविताची तरी। शोकदुर्वातलहरी। आंदोळत असे ॥४८॥ एथ कोपोनि जरी वैकुण्ठें। ऐसें हन म्हणिपैल अवचटें। जे तुज लोकांचें काइ वाटे। तूं ध्यानसुख हें भोगीं ॥४९॥ वरी जी लोकांचें कीर साधारण। वांयां आड सूतसें वोडण। केवीं सहसा म्हणें प्राण। माझेचि कांपती ॥३५०॥ ज्या

मज संहाररुद्र वासिपे। ज्या मजभेणें मृत्यु लपे। तो मी अहाळबाहळीं कांपें। ऐसें तुवां केलें ॥५१॥ परि नवल बापा हे महामारी। इया नाम विश्वरूप जरी। हे भ्यासुरपणें हारी। भयासि आणी ॥५२॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।

दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४॥

ठेलीं महाकाळेंसि हटेंतटें। तैसीं कितीएकें मुखें रागिटें। इहीं वाढोनियां धाकुटें। आकाश केलें ॥५३॥ गगनाचेनि वाडपणें नाकळे। त्रिभुवनींचियाही वारिया न वेंटाळे। ययाचेनि वाफा आगी जळे। कैसें धडाडीत असे ॥५४॥ तेवींचि एकासारिखें एक नोहे। एथ वर्णावर्णाचा भेदु आहे। हो कां जे प्रळयीं सावावो लाहे। वन्ही ययाचा ॥५५॥ जयाचिये आंगींची दीप्ती येवढी। जे त्रैलोक्य कीजे राखोंडी। कीं तयाही तोंडें आणि तोंडीं। दांत दाढा ॥५६॥ कैसा वारया धनुर्वात चढला। समुद्र कीं महापुरीं पडिला। विषाग्नि मारा प्रवर्तला। वडवानळासी ॥५७॥ हळाहळ आगी पियालें। नवल मरण मारा पेटलें। तैसें संहारतेजा या जाहलें। वदन देखा ॥५८॥ परी कोणें मानें विशाळ। जैसें तुटिलिया अंतराळ। आकाशासि कव्हळ। पडोनि ठेलें ॥५९॥ नातरी काखे सूनि वसुंधरी। जें हिरण्याक्षु रिगाला विवरीं। तें उघडलें हाटकेश्वरीं। जेवीं पाताळकुहर ॥३६०॥ तैसा वक्त्रांचा विकाशु। मार्जीं जिव्हांचा आगळाचि आवेशु। विश्व न पुरे म्हणोनि घांसु। न भरीचि कोडें ॥६१॥ आणि पाताळव्याळांचां फूत्कारीं। गरळज्वाळा लागती अंबरीं। तैसी पसरलिये वदनदरी। मार्जीं हे जिव्हा ॥६२॥ काढूनि

* प्रळयविजृंचीं जुंबाडें। जैसे पन्नासिले गगनाचे हुडे। तैसे आवाळुवांवरी आंकडे। धगधगीत दाढांचे *
 * ॥६३॥ आणि ललाटपटाचिये खोळे। कैसे भयातें भेडविताती डोळे। हो कां जे महामृत्यूचे उमाळे। *
 * कडवसां राहिले ॥६४॥ ऐसें वाऊनि महाभयाचें भोज। एथ काय निपजवूं पाहतोसि काज। तें नेणें *
 * परी मज। मरणभय आलें ॥६५॥ देवा विश्वरूप पहावयाचे डोहळे। केले तियें पावलों प्रतिफळें। बा *
 * देखिलासि आतां डोळे। निवावे तैसे निवाले ॥६६॥ अहो देहो पार्थिव कीर जाये। ययाची काकुळती *
 * कवणा आहे। परि आतां चैतन्य माझें विपायें। वांचे कीं न वांचे ॥६७॥ एन्ही भयास्तव आंग कांपे। *
 * नावेक आगळें तरी मन तापे। अथवा बुद्धिही वासिपे। आर्भिमानु विसरिजे ॥६८॥ परी येतुलियाही *
 * वेगळा। जो केवळ आनंदैककळा। तया अंतरात्मयाही निश्चळा। शियारी आली ॥६९॥ बाप *
 * साक्षात्काराचा वेधु। कैसा देशधडी केला बोधु। हा गुरुशिष्यसंबंधु। विपायें नांदे ॥७०॥ देवा तुझां *
 * ये दर्शनीं। जें वैकल्य उपजलें आहे अंतःकरणीं। तें सांवरावयालागीं गंवसणी। धैर्याची करितसें *
 * ॥७१॥ तंव माझेनि नामें धैर्य हारपलें। कीं तयाहीवरी विश्वरूपदर्शन जाहलें। हें असो परि मज भलें *
 * आतुडविलें। उपदेशासी ॥७२॥ जीव विसंवावयाचिया चाडा। धांवाधांवी करितसे बापुडा। परि सोय *
 * ही कवणेकडा। न लभे एथ ॥७३॥ ऐसें विश्वरूपाचिया महामारी। जीवित्व गेलें आहे चराचरीं। जी न *
 * बोलें तरि काय करीं। कैसेनि राहें ॥७४॥ *

* दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि। *

* दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥ *

* पें अखंड डोळ्यांपुढें। फुटलें जैसे महाभयाचें भाडें। तैशी तुझीं मुखें वितंडें। पसरलीं देखें *
 * ॥७५॥ असो दांतदाढांची दाटी। न झांकवे मा दोंदों वोठीं। सेंघ प्रळयशस्त्रांचिया दाट कांटी। *
 * लागलिया जैशा ॥७६॥ जैसें तक्षका विष भरलें। हो कां जे काळरात्रीं भूत संचरलें। कीं अग्नेयास्त्र *
 * परजिलें। वज्राग्नि जैसें ॥७७॥ तैशीं तुझीं वक्त्रें प्रचंडें। वरि आवेश हा बाहेरी वोसंडे। आले *
 * मरणरसाचे लोंढे। आम्हांवरी ॥७८॥ संहारसमयींचा चंडानिळु। आणि महाकल्पांत प्रळयानळु। या *
 * दोहीं जें होय मेळु। तै काय एक न जळे ॥७९॥ तैसीं संहारकें तुझीं मुखें। देखोनि धीरु कां आम्हां *
 * पारुखे। आतां भुललों मी दिशा न देखें। आपणपें नेणें ॥८०॥ मोटकें विश्वरूप डोळां देखिलें। *
 * आणि सुखाचें अवर्षण पडिलें। आतां जापाणीं जापाणीं आपुलें। अस्ताव्यस्त हें ॥८१॥ ऐसें करिसी *
 * म्हणोनि जरि जाणें। तरि हे गोष्टि सांगावी कां मी म्हणें। आतां एक वेळ वांचवीं जी प्राणें। या *
 * स्वरूपप्रळयापासोनि ॥८२॥ जरि तूं गोसावी आमुचा अनंता। तरि सुई वोडण माझिया जीविता। *
 * सांटवीं पसारा हा मागुता। महामारीचा ॥८३॥ आइकें सकळ देवांचिया परदेवते। तुवां चैतन्यें गा *
 * विश्व वसतें। तें विसरलासी हें उपरतें। संहारुं आदरिलें ॥८४॥ म्हणोनि वेगीं प्रसन्न होई देवराया। *
 * संहरीं संहरीं आपुली माया। काढी माते महाभया। पासोनियां ॥८५॥ हा ठायवरी पुढतपुढती। तूतें *

* म्हणिजे बहुवा काकुळती। ऐसा मी विश्वमूर्ती। भेडका जाहलों ॥८६॥ जें अमरावतीये आला धाडा।
* तें म्यां एकलेनि केला उवेडा। जो मी काळाचियाही तोंडा। वासिपु न धरीं ॥८७॥ परि तया आंतुल
* नव्हे हे देवा। एथ मृत्युसही करुनि चढावा। तुवां आमुचाचि घोटु भरावा। या सकळ विश्वेसीं ॥८८॥
* कैसा नव्हता प्रळयाचा वेळु। गोखा तूंचि मिनलासि काळु। बापुडा हा त्रिभुवनगोळु। अल्पायु जाहला
* ॥८९॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।

भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥

* अहा भाग्या विपरीता। विघ्न उठिलें शांत करितां। कटा विश्व गेलें आतां। तूं लागलासि ग्रासूं
* ॥३९०॥ हें नव्हे मा रोकडें। सैघ पसरुनिया तोंडें। कवळितासि चहूंकडे। सैन्यें इयें ॥३९१॥ नोहेति
* हे कौरवकुळींचे वीरा। आंधळिया धृतराष्ट्राचे कुमरा। हे गेले गेले सपरिवारा। तुझां वदनीं ॥३९२॥ आणि
* जे जे यांचेनि सावांयें। आले देशोदेशींचें राये। तयांचें सांगावया जावों न लाहे। ऐसें सरकटितु
* आहासी ॥३९३॥ मदमुखाचिया संघटा। घेत आहासि घटघटां। आरणीं हन थाटा। देतोसि मिठी
* ॥३९४॥ जंत्रावरिचील मारा। पदातींचे मोगरा। मुखाआंत भारा। हारपताति मा ॥३९५॥ कृतांताचिया
* जावळी। जें एकचि विश्वातें गिळी। तियें कोटीवरील सगळीं। गिळितासि शस्त्रें ॥३९६॥ चतुरंगा

* परिवारा। संजोडियां रहंवरां। दांत न लाविसी मा परमेश्वरा। कैसा तुष्टलासि बरवा ॥३९७॥ हां गा
* भीष्माऐसा कवणु। सत्यशौर्यनिपुणु। तोही आणि ब्राह्मण द्रोणु। ग्रासिलासि कटकटा ॥३९८॥ अहा
* सहस्रकराचा कुमरा। एथ गेला गेला कर्णवीरु। आणि आमुचिया आघवयांचा केरु। फेडिला देखें
* ॥३९९॥ कटकटा धातया। कैसें जाहलें अनुग्रहा यया। मियां प्रार्थूनि जगा बापुडिया। आणिलें मरण
* ॥४००॥ मागां थोडिया बहुवा उपपत्ती। येणें सांगितलिया विभूती। तैसा नसेचि मा पुढती। बैसलों
* पुसों ॥४०१॥ म्हणोनि भोग्य तें त्रिशुद्धी न चुके। आणि बुद्धिही होणारासारिखी ठाके। माझां कपाळीं
* पिटावें लोके। तें लोटेल काह्या ॥४०२॥ पूर्वीं अमृतही हातां आलें। परि देव नसतीचि उगले। मग
* काळकूट उठविलें। शेवटीं जैसें ॥४०३॥ परि तें एकबर्गी थोडें। केलिया प्रतिकारामाजिवडें। आणि तिये
* अवसरींचें तें सांकडें। निस्तरविलें शंभू ॥४०४॥ आतां हा जळता वारा कें वेंटाळे। कोणाही विषा भरलें
* गगन गिळे। महाकाळेंसि खेळें। आंगवत असे ॥४०५॥ ऐसा अर्जुन दुःखें शिणतु। शोचित असे जिवाआंतु।
* परि न देखे तो प्रस्तुतु। आर्भिप्रावो देवाचा ॥४०६॥ जे मी मारिता हे कौरव मरते। ऐसेनि वेंटाळिला
* होता मोहें बहुतें। तो फेडावयालागीं अनंतें। हें दाखविलें निज ॥४०७॥ अरे कोणही कोणातें न मारी। एथ
* मीचि हो सर्व संहारीं। हें विश्वरूपव्याजें हरी। प्रकटित असे ॥४०८॥ परि वायांचि व्याकुलता। ते न
* चोजवेचि पंडुसुता। मग अहा कंपु नव्हता। वाढवित असे ॥४०९॥ तेथ म्हणे पाहा हो एके वेळे।
* सासिकवचेंसि दोन्ही दळें। वदनीं गेलीं आभाळें। गगनीं कां जैसीं ॥४१०॥ कां महाकल्पाचां शेवटीं।

जें कृतांतु कोपला होय सृष्टी। तें एकविसांही स्वर्गा मिठी। पाताळासकट दे ॥११॥ नातरी उदासीनें
दैवें। संचकाचीं वैभवं। जेथींचीं तेथ स्वभावं। विलया जाती ॥१२॥ तैसीं सांचलीं सैन्यें एकवाटें। इये
मुखीं जाहलीं प्रविष्टें। परि एकही तोंडौनि न सुटे। कैसें कर्म देखा ॥१३॥ अशोकाचे अंगवसे।
चघळिले कऱ्हेनि जैसें। लोक वक्त्रामाजीं तैसे। वायां गेले ॥१४॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।

केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥२७॥

परि सिसाळें मुकुटेंसीं। पडिलीं दाढांचां सांडसीं। पीठ होत कैसीं। दिसत आहाती ॥१५॥ तियें
रत्नें दांतांचिये सवडी। कूट लागलें जिभेचां बुडीं। कांहीं कांहीं आगरडीं। द्रंष्ट्रांचीं माखलीं ॥१६॥ हो
कां जे विश्वरूपें काळें। ग्रासिलीं लोकांचीं शरीरें बळें। परि जीवदेहींचीं सिसाळें। अवश्य कीं राखिलीं
॥१७॥ तैसीं शरीरामाजीं चोखडीं। होतीं उत्तमांगें इयें फुडीं। म्हणोनि महाकाळाचां हि तोंडीं। परि
उरलीं शेखीं ॥१८॥ मग म्हणे हें काई। जन्मलयां आन मोहरचि नाहीं। जग आपैसेंचि वदनडोहीं।
संचरताहे ॥१९॥ या आघवियाचि सृष्टी। लागलिया आहाति वदनाचां वाटीं। आणि हा जेथिंचिया
तेथ मिठी। देतसे उगला ॥४२०॥ ब्रह्मादिक समस्ता। उंचा मुखामाजीं धांवता। येर सामान्य हे भरता।
एलीच वदनीं ॥२१॥ आणीकही भूतजाता। तें उपजलेचि ठायीं ग्रासिता। परि याचिया मुखा निभ्रांता।

न सुटेचि कांहीं ॥२२॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।

तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥

जैसे महानदीचे वोघा। वहिले ठाकिती समुद्राचें आंगा। तैसें आघवांचिकडूनि जगा। प्रवेशत मुखीं
॥२३॥ आयुष्यपथें प्राणिगणीं। करोनि अहोरात्रीची सोवाणी। वेगें वक्त्रामिळणीं। साधिजत आहाती
॥२४॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्ग्या विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।

तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

जळतया गिरीचिया गवखा-। माजीं घापती पतंगाचिया झाका। तैसे समग्र लोक देखा। इये
वदनीं पडत ॥२५॥ परि जेतुलें येथ प्रवेशलें। तेंतुलया लोहें पाणीचि पां गिळिलें। वहिवटीं हि पुसिलें।
नामरूप तयांचें ॥२६॥ आणि येतुलाही आरोगणा। करितां भुके नाहीं उणेपणा। कैसें दीपन असाधारणा।
उदयलें यया ॥२७॥ जैसा रोगिया ज्वराहूनि उठिला। कां भणंगा दुष्काळु पाहला। तैसा जिभांचा
लळलळाटु देखिला। आवाळुवें चाटितां ॥२८॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान् समग्रान् वदनैर्ज्वलदभिः।

तेजोभिरापूर्य जगत् समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥३०॥

तैसैं आहारचेन नावें कांहीं। तोंडापासूनि उरलेंचि नाहीं। कैसी समसमित नवाई। भुकेलेपणाची
 ॥२९॥ काय सागराचा घोंटु भरावा। कीं पर्वताचा घांसु करावा। ब्रह्मकटाहो घालावा। आसकाचि
 दाढे ॥४३०॥ दिशा सगळियाचि गिळाविया। चांदिणिया चाटूनि घ्याविया। ऐसैं वर्तते आहे साविया।
 लौल्य बा तुज ॥३१॥ जैसा भोगीं कामु वाढे। कां इंधनें आगीसि हाकाक चढे। तेसीं खातखातांचि
 तोंडें। खाखातें ठेलीं ॥३२॥ कैसैं एकचि केवढें पसरलें। त्रिभुवन जिह्वाणीं आहे टेकलें। जैसैं कां
 कवींठ घातलें। वडवानळीं ॥३३॥ ऐसीं अपारें वदनें। आतां येतुलीं कैचीं त्रिभुवनें। कां आहारु न
 मिळतां येणें मानें। वाढविलीं असह्या ॥३४॥ अगा हा लोक बापुडा। जाहला वदनज्वाळां वरपडा।
 जैसीं वणवेयाचिया वेढां। सांपडती मृगें ॥३५॥ आतां तैसैं विश्वासि जाहालें। देवो नव्हे हें कर्म आलें।
 कीं जगजळचरां पांगिलें। काळजाळें ॥३६॥ आतां इये अंगप्रभेचिये वागुरे। कोणीकडूनि निगिजैल
 चराचरें। वक्त्रें नव्हतीं जोहरें। वोडवलीं जगा ॥३७॥ आगी आपुलेनि दाहकपणें। कैसेनि पोळिजे तें
 नेणे। परि जया लागे त्या प्राणें। सुटिका नाहीं ॥३८॥ माझेनि तिखटपणें। कैसैं निवटे हें शस्त्र कायि
 जाणे। कां आपुलिया मारा नेणे। विष जैसैं ॥३९॥ तैसी तुज कांहीं। आपुलिया उग्रपणाची सेचि
 नाहीं। परि ऐलीकडे मुखीं खाई। हों सरली जगाची ॥४०॥ अगा आत्मा तूं एका सकळविश्वव्यापका
 तरी का आम्हां अंतकु। वोडवलासी ॥४१॥ तरि मियां सांडिली जीविताची चाड। आणि तुवांही न

धरावी भीड। मनीं आहे तें उघडा बोल पां सुखें ॥४२॥ किती वाढविसी या उग्ररूपा। अंगींचें
 भगवंतपण आठवीं बापा। नाहीं तरि कृपा। मजपुरती पाहीं ॥४३॥ परि एक वेळ वेदवेद्या। त्रिभुवनाचया
 आद्या। विनवणी विश्ववंद्या। आइकें माझी ॥४४॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।

विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

ऐसैं बोलोनि वीरें। चरण नमस्कारिले शिरें। मग म्हणे तरि सर्वेश्वरें। अवधारिजो ॥४५॥ मियां
 होआवया समाधान। पुसिलें विश्वरूपध्यान। आणि एके काळें त्रिभुवन। गिळितुचि उठिलासी ॥४६॥
 तरि तूं कोण कां येतुलीं। इयें भ्यासुरें मुखें कां मेळविलीं। आघवांचि करीं परिजिलीं। शस्त्रें काह्या
 ॥४७॥ जी जंव तंव रागीटपणें। वाढोनि गगना आणितासि उणें। कां डोळे करुनि भिंगुळवाणे।
 भेडसावीत आहासी ॥४८॥ एथ कृतांतेंसीं देवा। कासया किजतसे हेवा। आपुला तुवां सांगावा।
 आर्भिप्राय मज ॥४९॥ या बोला म्हणे अनंतु। मी कोण हें आहासी पुसतु। आणि कायिसयालागीं
 असे वाढतु। उग्रतेसीं ॥४५०॥

श्रीभगवानुवाच : कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।

ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥

तरि मी काळु गा हें फुडें। लोक संहारावयालागीं वाढें। सेंघ पसरिलीं आथि तोंडें। आतां ग्रासीन

* हें आघवें ॥५१॥ तेथ अर्जुन म्हणे कटकटां। उबगिलों मागिल्या संकटा। म्हणोनि आळविला तंव *
 * वोखटा। उधाइला हा ॥५२॥ तेवींचि कठिण बोलें आसतुटी। अर्जुन होईल हिंपुटी। म्हणोनि सवेंचि *
 * म्हणे किरीटी। परि आन एक असे ॥५३॥ तरि आतांचि ये संहारवाहरे। तुम्ही पांडव असा बाहिरे। *
 * तेथ जातजात धनुर्धरें। सांवरिले प्राण ॥५४॥ होता मरणमहामारीं गेला। तो मागुता सावधु जाहला। *
 * मग लागला बोला। चित्त देऊं ॥५५॥ ऐसें म्हणिजत आहे देवें। अर्जुना तुम्ही माझे हें जाणावें। येर *
 * जाण मी आघवें। सरलों ग्रासूं ॥५६॥ वज्रानळीं प्रचंडीं। जैसी घापे लोणियाची उंडी। तैसें जग हें *
 * माझां तोंडीं। तुवां देखिले जें ॥५७॥ तरि तयामाझारीं कांहीं। भरंवसेनि उणें नाहीं। इयें वायांचि *
 * सैन्यें पाहीं। वल्गिजत आहती ॥५८॥ हे जे मिळोनियां मेळे। थती वीरवृत्तीचेनि बळें। यमावरी *
 * गजदळें। वाखाणिजताती ॥५९॥ म्हणती सृष्टीवरी सृष्टी करूं। आण वाहूनि मृत्यूतें मारूं। जगाचा *
 * भरूं। घोंटु यया ॥६०॥ पृथ्वी सगळीचि गिळूं। आकाश वरिच्यावरि जाळूं। काई बाणवरी खिळूं। *
 * वारयातें ॥६१॥ ऐशा चतुरंगाचिया संपदा। करित महाकाळेंसीं स्पर्धा। वांटिवेचिया मदा। वळघले जे *
 * ॥६२॥ बोल हतियेराहूनि तिखटा। दिसती आग्निपरिस दासटा। मारकपणें काळकूटा। महुर म्हणत *
 * ॥६३॥ तरि हे गंधर्वनगरींचे उमाळे। जाण पोकळीचे पेंडवळे। अगा चित्रींचीं फळें। वीर हे देखें ॥६४॥ *
 * हा मृगजळाचा पूर आला। दळ नव्हे कापडाचा साप केला। इया शृंगारुनियां खाला। मांडिलिया पै *

* ॥६५॥ येर चेष्टवितें जें बळा। तें मियां मागांचि ग्रासिलें सकळा। आतां कोलौरिचे वेताळा। तैसे निर्जीव *
 * हे आहाती ॥६६॥ हालविती दोरी तुटली। तरि तियें खांबावरील बाहुलीं। भलतेणें लोटिलीं। *
 * उलथोनि पडती ॥६७॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।

मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥३३॥

* तैसा सैन्याचा यया बगा। मोडतां वेळु न लगेले पै गा। म्हणोनि उठीं उठीं वेगा। शाहाणा होई *
 * ॥६८॥ तुवां गोघ्रहणाचेनि अवसरें। घातलें मोहनास्त्र एकसरें। मग विराटाचेनि महाभेडें उत्तरें। *
 * आसडूनि नागाविलें ॥६९॥ आतां हें त्याहूनि निपटारें जाहलें। निवटीं आयितें रण पडिलें। घेई यश *
 * रिपु जितिले। एकलेनि अर्जुन ॥७०॥ आणि कोरडें यशचि नोहे। समग्र राज्यही आलें आहे। तूं *
 * निमित्तमात्रचि होये। सव्यसाची ॥७१॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।

मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

* द्रोणाचा पाडु न करीं। भीष्माचें भय न धरीं। कैसेनि कर्णावरी। परजूं हें न म्हण ॥७२॥ कोण *
 * उपायो जयद्रथा कीजे। हें न चिंतू चित्त तुझें। आणिकही आथि जे जे। नावाणिगे वीर ॥७३॥ तेही *
 * एक एक आघवे। चित्रींचे सिंहाडे मानावे। जैसे वोलेनि हातें घ्यावें। पुसोनियां ॥७४॥ यावरी पांडवा। *

काइसा झुंजाचा मेळावा। हा आभासु गा आघवा। येर ग्रासिलें मियां ॥७५॥ जेव्हां तुवां देखिले। हे माझां वदनीं पडिले। तेव्हांचि यांचें आयुष्य सरलें। आतां रितीं सोपें ॥७६॥ म्हणोनि वहिला उठीं। मियां मारिले तूं निवटीं। न रिगे शोकसंकटीं। नाथिलिया ॥७७॥ आपणचि आडखिळा कीजे। तो कौतुकें जैसा विंधोनि पाडिजे। तैसें देखें गा तुझें। निमित्त आहे ॥७८॥ बापा विरुद्ध जें जाहलें। तें उपजतांचि वाघें नेलें। आतां राज्येंशीं संचलें। यश तूं भोगीं ॥७९॥ सावियाचि उतत होते दायादा। आणि बळिये जगीं दुर्मद। ते वधिले विशद। सायासु न लागतां ॥८०॥ ऐसिया इया गोष्टी। विश्वाचां वाक्पटीं। लिहूनि घालीं किरीटी। जगामार्जी ॥८१॥

संजय उवाच : एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।

नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

ऐसी आघवीचि हे कथा। तया अपूर्णमनोरथा। संजयो सांगे कुरुनाथा। ज्ञानदेवो म्हणे ॥८२॥ मग सत्यलोकौनि गंगाजळ। सुटलिया वाजत खळाळ। तैशी वाचा विशाळ। बोलतां तया ॥८३॥ नातरी महामेघांचे उमाळे। घडघडीत एके वेळे। घुमघुमिला मंदराचळें। क्षीराब्धी जैसा ॥८४॥ तैसें गंभीरें महानादें। हें वाक्य विश्वकंदें। बोलिलें अगाधें। अनंतरूपें ॥८५॥ तें अर्जुनं मोटकें ऐकिलें। आणि सुख कीं भय दुणावलें। हें नेणों परि कापिन्नलें। सर्वांग तयाचें ॥८६॥ सखोलपणें वळली मोटा

आणि तैसेचि जोडले करसंपुट। वेळोवेळां ललाटा चरणीं ठेवी ॥८७॥ तेवींचि कांहीं बोलों जाये। तंव गळा बुजालाचि ठाये। हें सुख कीं भय होये। हें विचारा तुम्ही ॥८८॥ परि तेव्हां देवाचेनि बोलें। अर्जुना हें ऐसें जाहलें। मियां पदांवरि देखिलें। अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते! इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८९॥ मग तैसाचि भेणभेण। पुढती जोहारुनि चरण। मग म्हणे जी आपण। ऐसें बोलिलेति ॥९०॥

अर्जुन उवाच : स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।

रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥३६॥

ना अर्जुना मी काळु। आणि ग्रासिजे तो माझा खेळु। हा बोलु कीर अढळु। मानूं आम्ही ॥९१॥ परि तुवां जी काळें। आजि स्थितीचिये वेळे। ग्रासिजे हें न मिळे। विचारासी ॥९२॥ कैसेनि आंगींचें तारुण्य मोडावें। कैचें नव्हे तें वार्धक्य काढावें। म्हणोनि करुं म्हणसी तें नव्हे। बहुतकरुनी ॥९३॥ हां जी चौपाहारी न भरतां। कोणेही वेळे श्रीअनंता। काय माध्यान्हीं सविता। मावळतु आहे ॥९४॥ पैं तुज अखंडिता काळा। तिन्ही आहाती जी वेळा। त्या तिन्ही परी सबळा। आपुलालां समयीं ॥९५॥ जे वेळीं हो लागे उत्पत्ती। ते वेळीं स्थिति प्रळयो हारपती। आणि स्थितिकाळीं न मिरविती। उत्पत्ति प्रळयो ॥९६॥ पाठीं प्रळयाचिये वेळे। उत्पत्ति स्थिति मावळे। हें कायसेनही न ढळे। अनादि ऐसे ॥९७॥ म्हणोनि आजि तरी भरें भोगें। स्थिती वर्तिजत आहे जगें। एथ ग्रासिसी तूं हें नलगे। माझां

* जीवीं ॥९८॥ तंव संकेतें देव बोले। अगा या दोन्ही सैन्यांसीचि मरण पुरलें। तें प्रत्यक्ष तुज दाविलें। *
 * येर यथाकाळें जाण ॥९९॥ हा संकेतु जंव अनंता। वेळु लागला बोलतां। तंव अर्जुनें लोकु मागुता। *
 * देखिला यथास्थिति ॥५००॥ मग म्हणतसे देवा। तूं सूत्रीं विश्वलाघवा। जग आला मा आघवा। *
 * पूर्वस्थिती पुढती ॥१॥ परि पडिलिया दुःखसागरीं। तूं काढिसी कां जयापरी। ते कीर्ति तुझी हरी। *
 * आठवित असें ॥२॥ कीर्ति आठवितां वेळोवेळां। भोगीतसें महासुखाचा सोहळा। तेथ हर्षामृतकल्लोळा। *
 * वरि लोळत आहों ॥३॥ देवा जियालेपणें जग। धरी तुझां ठायीं अनुराग। आणि दुष्टां तयां भंगा। *
 * आर्धिकाधिक ॥४॥ पै त्रिभुवनींचिया राक्षसां। महाभय तूं हृषीकेश। म्हणोनि पळताती दिशां। *
 * पैलीकडे ॥५॥ येर सुर सिद्ध किन्नरा किंबहुना चराचरा। ते तुज देखोनि हर्षनिर्भरा। नमस्कारित *
 * असती ॥६॥

* कस्माच्च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे। अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥ *
 * एथ गा कवणा कारणा। राक्षस हे नारायणा। न लगतीचि चरणा। पळते जाहले ॥७॥ आणि हें *
 * तूतें काइ पुसावें। येतुलालें आम्हांसिही जाणवे। तरी सूर्योदयीं राहावें। कैसेनि तमें ॥८॥ तूं स्वप्रकाशाचा *
 * आगरु। आणि जाला आहासि गोचरु। म्हणोनिया निशाचरां केरु। फिटला सहजें ॥९॥ हें येतुले *
 * दिवस आम्हां। कांहीं नेणवेचि श्रीरामा। आतां देखतसों महिमा। गंभीर तुझा ॥५१०॥ जेथूनि नाना *

* सृष्टीचिया वोळी। पसरती भूतग्रामाचिया वेली। तया महद्ब्रह्मातें व्याली। दैविकी इच्छा ॥११॥ देवो *
 * निःसीमतत्त्व सदोदितु। देवो निःसीमगुण अनंतु। देवो निःसीमसाम्य सततु। नरेंद्र देवांचा ॥१२॥ जी *
 * तूं त्रिजगतिये वोलावा। अक्षर तूं सदाशिवा। तूंचि संतासंत देवा। तयाही अतीत तें तूं ॥१३॥

* त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।

* वेत्ताऽसि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

* प्रकृतिपुरुषांचां आदी। जी महत्तत्वां तूंचि अवधी। स्वयें तूं अनादी। पुरातनु ॥१४॥ सकळ *
 * विश्वजीवना। जीवांसि तूंचि निधाना। भूतभविष्याचें ज्ञाना। तुझांचि हातीं ॥१५॥ जी श्रुतीचिया *
 * लोचना। स्वरूपसुख तूं आर्भिन्ना। त्रिभुवनाचिया आयतना। आयतन तूं ॥१६॥ म्हणोनि जी परमा *
 * तूतें म्हणिजे महाधामा। कल्पांतीं महद्ब्रह्मा। तुझां अंकीं रिगे ॥१७॥ किंबहुना देवें। विश्व विस्तारिलें *
 * आहे आघवें। अनंतरूपा वानावें। कवणें तूतें ॥१८॥

* वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।

* नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥

* नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्वा

* अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

* जी काय एक तूं नव्हसी। तूं कवणे ठायीं गा नससी। हें असो जैसा आहासी। तैसिया नमो

* ॥१९॥ वायु तूं अनंता। यम तूं नियमिता। प्राणिगणीं वसता। आग्नि जी तूं ॥५२०॥ वरुण तूं सोमा *
 * स्रष्टा तूं ब्रह्म। पितामहाचाही परमा। आदिजनक तूं ॥२१॥ आणिकही जें जें कांहीं। रूप आथि *
 * अथवा नाहीं। तया नमो तुज तैसयाही। जगन्नाथा ॥२२॥ ऐसें सानुरागें चितें। स्तवन केलें पांडुसुतें। *
 * मग पुढती म्हणे नमस्ते। नमस्ते प्रभो ॥२३॥ पाठीं तिये साद्यंतें। न्याहाळी श्रीमूर्तीतें। आणि पुढती *
 * म्हणे नमस्ते। नमस्ते प्रभो ॥२४॥ पाहतां पाहतां प्रांतें। समाधान पावे चितें। आणि पुढती म्हणे *
 * नमस्ते। नमस्ते प्रभो ॥२५॥ इये चराचरीं समस्ते। अखंडिता देखे तयांतें। आणि पुढती म्हणे *
 * नमस्ते। नमस्ते प्रभो ॥२६॥ ऐसीं रूपें तियें अद्भुतें। आश्चर्यें स्फुरती अनंतें। तंव तंव नमस्ते। *
 * नमस्तेचि म्हणे ॥२७॥ आणिक स्तुति नाठवे। आणि निवांताही नसवे। नेणों कैसा प्रेमभावे। *
 * गाजोंचि लागे ॥२८॥ किंबहुना झ्यापरी। नमन केलें सहस्रवरी। कीं पुढती म्हणे श्रीहरी। तुज *
 * सन्मुखा नमो ॥२९॥ देवासि पाठीपोट आथि कीं नाहीं। येणें उपयोगु आम्हां काई। तरि तुज *
 * पाठिमोरेयाही। नमो स्वामी ॥५३०॥ उभा माझिये पाठीसीं। म्हणोनि पाठिमोरें म्हणावें तुम्हांसी। *
 * सन्मुख विमुख जगेंसीं। न घडे तुज ॥३१॥ आतां वेगळालिया अवेवां। नेणें रूप करूं देवा। म्हणोनि *
 * नमो तुज सर्वा। सर्वात्मका ॥३२॥ जी अनंतबळसंभ्रमा। तुज नमो आर्मितविक्रमा। सकळकाळीं *
 * समा। सर्वदेवा ॥३३॥ आघवां अवकाशीं जैसैं। अवकाशचि होऊनि आकाश असे। तूं सर्वपणें तैसैं। *

* पातलासि सर्व ॥३४॥ किंबहुना केवळ। सर्व हें तूंचि निखळ। परि क्षीरार्णवीं कल्लोळ। पयाचे जैसे *
 * ॥३५॥ म्हणोनियां देवा। तूं वेगळा नव्हसी सर्वा। हें आलें मज सद्भावा। आतां तूंचि सर्व ॥३६॥ *

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।

अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात् प्रणयेन वाऽपि ॥४१॥

* परि ऐसिया तूतें स्वामी। कहींच नेणों जी आम्ही। म्हणोनि सोयरे संबंधधर्मीं। राहाटलों तुजसीं *
 * ॥३७॥ अहा थोर वाउर जाहलें। अमृतें संमार्जन म्यां केलें। वारिकें घेऊनि दिधलें। कामधेनूतें *
 * ॥३८॥ परिसाचा खडवाचि जोडला। कीं फोडोनि गाडोरा आम्हीं घातला। कल्पतरु तोडोनि केला। *
 * कुंपु शेता ॥३९॥ चिंतामणीची खाणी लागली। तेणेंवरी वोढाळें वोल्हांटिलीं। तैसी तुझी जवळिक *
 * धाडिली। सांगातीपणें ॥५४०॥ हें आजिचेंचि पाहें पां रोकडें। कवण जुंझ हें केवढें। परि परब्रह्म तूं *
 * उघडें। सारथी केलासी ॥४१॥ ययां कौरवांचिया घरा। शिष्टाई धाडिलासि दातारा। ऐसा वणिजेसाठीं *
 * जागेश्वरा। विकलासि आम्हीं ॥४२॥ तूं योगियांचें समाधिसुखा। कैसा जाणेचिना मी मूर्ख। उपरोधु *
 * जी सन्मुखा। तुजसीं करूं ॥४३॥ *

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।

एकोऽथवाप्यच्युत तत् समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

तूं या विश्वाची अनादि आदी। बैससी जिये सभासदीं। तेथें सोयरीकीचिया शब्दीं। रळीं बोलों

* ॥४४॥ विपायें राउळा येवों। तरि तुझेनि अंगें मानु पावों। मानसी तरी जावों। रुसोनि सलगी ॥४५॥ *
 * पायां लागोनि बुझावणी। तुझां ठायीं शाड्गपाणी। पाहिजे ऐशी करणी। बहु केली आम्हीं ॥४६॥ *
 * सजनपणाचिया वाटा। तुजपुढें बैसैं उफराटा। हा पाडु काय वैकुंठा। परि चुकलों जी ॥४७॥ देवेंसि *
 * कोलकाठी धरूं। अखाडा झोंबीलोबीं करूं। सारी खेळतां अस्करूं। निकरेंही भांडों ॥४८॥ चांग तें *
 * उराउरीं मागों। देवासि कीं बुद्धि सांगों। तेवींचि म्हणों काय लागों। तुझें आम्ही ॥४९॥ ऐसा अपराधु *
 * हा आहे। जो त्रिभुवनीं न समाये। जी नेणेचि कां पाये। शिवतिले तुझे ॥५०॥ देवो बोनयाचां *
 * अवसरीं। लोभें कीर आठवण करी। परि माझा निसुग गर्व अवधारीं। जे फुगूनचि बैसैं ॥५१॥ *
 * देवाचिया भोगायतनीं। खेळतां आशंकेना मनीं। जी रिगोनियां शयनीं। सरिसा पडुडे ॥५२॥ 'कृष्णा' *
 * म्हणोनि हाकारिजे। यादवपणें तूतें लेखिजे। आपली आण घालिजे। जातां तुज ॥५३॥ मज एकासनीं *
 * बैसणें। कां तुझा बोलु न मानणें। हें वोळखीचेनि दाटपणें। बहुत घडलें ॥५४॥ म्हणोनि काय काय *
 * आतां। निवेदिजेल अनंता। मी राशि आहे समस्तां। अपराधांची ॥५५॥ यालागीं पुढां अथवा पाठीं। *
 * जियें राहटलों बहुवें वोखटीं। तियें मायेचिया परी पोटीं। सामावीं प्रभो ॥५६॥ जी कोणही एके वेळे। *
 * सरिता घेऊनि येती खडुळें। तियें सामाविजेति सिंधुजळें। आन उपायो नाही ॥५७॥ तैसीं प्रीती कां *
 * प्रमादें। देवेंसीं मज विरुद्धें। बोलविलीं तियें मुकुंदें। उपसाहावीं जीं ॥५८॥ आणि देवाचेनि क्षमत्वे *

* क्षमा। आधारु जाली आहे या भूतग्रामा। म्हणोनि पुरुषोत्तमा। विनवूं तें थोडें ॥५९॥ तरि आतां *
 * अप्रमेया। मज शरणागता आपुलिया। क्षमा कीजो जी यया। अपराधांसी ॥५६०॥ *

पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥४३॥

* जी जाणितलें मियां साचें। महिमान आतां देवाचें। देवो होय चराचराचें। जन्मस्थान ॥६१॥ *
 * हरिहरादि समस्तां। देवा तूं परम देवता। वेदांतेंही पढविता। आदिगुरु तूं ॥६२॥ गंभीर तूं श्रीरामा। *
 * नानाभूतैकसमा। सकळगुणीं अप्रतिमा। आर्द्धितीया ॥६३॥ तुजसी नाहीं सरिसें। हें प्रतिपादनचि *
 * कायसें। तुवां जालेनि आकाशें। सामाविलें जग ॥६४॥ तया तुझेनि पाडें दुजे। ऐसें बोलतांचि *
 * लाजिजे। तेथ आर्धिकाचि कीजे। गोठी केवीं ॥६५॥ म्हणोनि त्रिभुवनीं तूं एका। तुजसरिसा ना *
 * आर्धिकु। तुझा महिमा अलौकिकु। नेणिजे वानूं ॥६६॥ *

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

* ऐसें अर्जुनं म्हणितलें। मग पुढती दंडवत घातलें। तेथें सात्त्विकाचें आलें। भरतें तया ॥६७॥ *
 * मग म्हणतसे प्रसीद प्रसीद। वाचा होतसे सद्गद। काढी जी अपराध। समुद्रौनि मातें ॥६८॥ तुज *
 * विश्वसुहृदातें कहीं। सोयरेपणें न मनूचि पाहीं। तुज ईश्वरेश्वराचां ठायीं। ऐश्वर्य केलें ॥६९॥ तूं वर्णनीय *

* परी लोभें। मातें वर्णिसी पां सभे। तरि मियां वल्गिजे क्षोभें। आर्थिकाधिक ॥५७०॥ आतां ऐसऐसेया *
 * अपराधां। मर्यादा नाहीं मुकुंदा। म्हणोनि रक्ष रक्ष प्रमादा। पसावो म्हणुनी ॥७१॥ जी हेंचि *
 * विनवावयालागी। केंची योग्यता माझां आंगीं। परि अपत्य जैसें सलगी। बापेंसिं बोले ॥७२॥ पुत्राचे *
 * अपराधा। जरी जाहले अगाधा। तरी पिता साहे निर्द्वंद्व। तैसें साहिजा जी ॥७३॥ सख्याचें उद्धता *
 * सखा साहे निवांता। तैसें तुवां समस्ता। साहिजो जी ॥७४॥ प्रियाचां ठायीं सन्मान। प्रिय न पाहे *
 * सर्वथा जाण। तेवीं उच्छिष्ट काढिलें आपण। ते क्षमा कीजो ॥७५॥ नातरी प्राणाचें सोयरें भेटे। मग *
 * जीवें भूतलीं जियें संकटें। तियें निवेदितां न वाटे। संकोचु कांहीं ॥७६॥ कां उखितें आंगें जीवें। *
 * आपणपें दिधलें जिया भावें। तिये कांतु मिनलिया न राहवे। हृदय जेवीं ॥७७॥ तयापरी जी मियां। *
 * हें विनविलें तुमतें गोसाविया। आणि कांहीं एक म्हणावया। कारण असे ॥७८॥

* अदृष्टपूर्व हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे। तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

* तरि देवेसी सलगी केली। जे विश्वरूपाची आळी घेतली। ते मायबापें पुरविली। स्नेहाळाचेनि *
 * ॥७९॥ सुरतरुंचीं झाडें। आंगणीं लावावीं कोडें। देयावें कामधेनूचें पाडें। खेळावया ॥५८०॥ मियां *
 * नक्षत्रीं डाव पाडावा। चंद्र चेंडुवालागीं देयावा। हा छंदु सिद्धी नेला आघवा। माउलिये तुवां ॥८१॥ *
 * जया अमृतलेशालागीं सायासा। तयाचा पाउस केला चारी मासा। पृथ्वी वाहून चासेचासा। चिंतामणि

* पेरिले ॥८२॥ ऐसा कृतकृत्य केला स्वामी। बहुवे लळा पाळिला तुम्हीं। दाविलें जें हरब्रह्मीं। नायकिजे *
 * कार्णी ॥८३॥ मग देखावयाची केउती गोठी। जयाची उपनिषदां नाहीं भेटी। ते जिव्हारींची गांठी। *
 * मजलागीं सोडिली ॥८४॥ जी कल्पादीलागोनि। आजिची घडी धरुनी। माझीं जेतुलीं होउनी। गेलीं *
 * जन्में ॥८५॥ तयां आघवियांचिआंतु। घरडोळी घेऊनि असें पाहतु। परि ही देखिली ऐकिली मातु। *
 * आतुडेचिना ॥८६॥ बुद्धीचें जाणणें। कहीं न वचेचि याचेनि आंगणें। हे सादही अंतःकरणें। करवेचिना *
 * ॥८७॥ तेथ डोळ्यां देखी होआवी। ही गोठीचि कायसया करावी। किंबहुना पूर्वीं। दृष्ट ना श्रुत *
 * ॥८८॥ तें हें विश्वरूप आपुलें। तुम्हीं मज डोळां दाविलें। तरि माझें मन झालें। हृष्ट देवा ॥८९॥ परि *
 * आतां ऐसी चाड जीवीं। जे तुजसी गोठी करावी। जवळीक हे भोगावी। आलिंगावयासी ॥५९०॥ ते *
 * येचि स्वरूपीं करुं म्हणिजे। तरि कोणे एके मुखेंसी चावळिजे। आणि कोणा खेंव देइजे। तुज लेख *
 * नाहीं ॥९१॥ म्हणोनि वारियासवें धांवणें। न ठके गगना खेंव देणें। जळकेली खेळणें। समुद्रीं केउतें *
 * ॥९२॥ यालागीं जी देवा। एथिंचें भय उपजतसे जीवा। म्हणोनि येतुला लळा पाळावा। जे पुरे हें *
 * आतां ॥९३॥ पै चराचर विनोदें पाहिजे। मग तेणें सुखें घरीं राहिजे। तैसें चतुर्भुज रूप तुझें। तो *
 * विसांवा आम्हां ॥९४॥ आम्हीं योगजात अभ्यासावें। तेणें याचि अनुभवा यावें। शास्त्रातें आलोडावें। *
 * परि सिद्धांतु तो हाचि ॥९५॥ आम्हीं यजनें किजती सकळें। परि तियें फळावीं येणेंचि फळें। तीर्थ *
 * होतु सकळें। याचिलागीं ॥९६॥ आणीकही कांहीं जें जें। दान पुण्य आम्हीं कीजे। तया फळीं फळ

हेंचि तुझें। चतुर्भुज रूप ॥९७॥ ऐसी तेथिंची जीवा आवडी। म्हणोनि तेंचि देखावया लवडसवडी।
वर्तत असे ते सांकडी। फेडीं वेगां ॥९८॥ अगा जीवींचें जाणतेया। सकळ विश्वसवितेया। प्रसन्न
होई पूजितया। देवांचिया देवा ॥९९॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैवातेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥

कैसें नीलोत्पलातें रांवित। आकाशाही रंगु लावित। तेजाची वोज दावित। इंद्रनीळा ॥६००॥
जैसा परिमळ जाहला मरगजा। कां आनंदासीचि निघालिया भुजा। ज्याचे जानूवरी मकरध्वजा।
जोडली बरव ॥१॥ मस्तकीं मुगुटातें ठेविलें। कीं मुकुटा मुकुट मस्तक झालें। शृंगारा लेणें लाधलें।
आंगाचेनि जया ॥२॥ इंद्रधनुष्याचिये आडणी। मार्जीं मेघ गगनरंगणीं। तैसें आवरिलें शाड्गपाणी।
वैजयंतिया ॥३॥ कवणी ते उदार गदा। असुरां देत कैवल्य सदा। कैसें चक्र हन गोविंदा। सौम्यतेजें
मिरवे ॥४॥ किंबहुना स्वामी। तें देखावया उत्कंठित पां मी। म्हणोनि आतां तुम्हीं। तैसया होआवें
॥५॥ हे विश्वरूपाचें सोहळे। भोगूनि निवाले जी डोळे। आतां होताति आधले। कृष्णमूर्तीलागीं ॥६॥
तें साकार कृष्णरूपडें। वांचूनि पाहों नावडे। तें न देखतां थोडें। मानिताती हे ॥७॥ आम्हां भोगमोक्षाचां
ठायीं। श्रीमूर्तीवांचूनि नाहीं। म्हणोनि तैसाचि साकारु होई। हें सांवरीं आतां ॥८॥

श्रीभगवानुवाच : मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।

तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

या अर्जुनाचिया बोला। विश्वरूपा विस्मयो जाहला। म्हणे ऐसा नाहीं देखिला। धसाळ कोणी
॥९॥ कोण हे वस्तु पावला आहासी। तया लाभाचा तोषु न घेसी। मा भेणें काय नेणों बोलसी। हेकाडु
ऐसा ॥६१०॥ आम्हीं सावियाचि जें प्रसन्न होणें। तें आंगचिवरी म्हणे देणें। वांचोनि जीव असे वेंचणें।
कवणासि गा ॥११॥ तें हें तुझिये चाडे। आजि जिवाचेंचि दळवाडें। कामऊनियां येवडें। रचिलें ध्यान
॥१२॥ ऐसी काय नेणों तुझिये आवडी। जाहली प्रसन्नता आमुची वेडी। म्हणोनि गौप्याचीही गुढी।
उभविली जर्गी ॥१३॥ तें हें अपरां अपार। स्वरूप माझें परात्परा। एथूनि ते अवतारा। कृष्णादिक
॥१४॥ हें ज्ञानतेजाचें निखळा। विश्वात्मक केवळा। अनंत हें अढळा। आद्य सकळां ॥१५॥ हें तुजवांचोनि
अर्जुना। पूर्वीं श्रुत दृष्ट नाहीं आना। जे जोगें नव्हे साधना। म्हणोनियां ॥१६॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः। एवंप्रपन्नः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

याची सोय पातले। आणि वेदीं मौनचि घेतलें। यज्ञ की माघौते आले। स्वर्गौनीचि ॥१७॥
साधकीं देखिला आयासु। म्हणोनि वाळिला योगाभ्यासु। आणि अध्ययनें सौरसु। नाहीं एथ ॥१८॥
सीगेचीं सत्कर्में। धाविन्नलीं संभ्रमें। तिहीं बहुतेकीं श्रमें। सत्यलोकु ठाकिला ॥१९॥ तपीं ऐश्वर्य
देखिलें। आणि उग्रपण उभयांचि सांडिलें। एवं तपसाधन जें ठेलें। अपारांतरिं ॥६२०॥ तें हें तुवां
अनायासें। विश्वरूप देखिलें जैसें। इये मनुष्यलोकीं तैसें। न फावेचि कवणा ॥२१॥ आजि

ध्यानसंपत्तीलागीं। तूंचि एकु आथिला जगीं। हें परमभाग्य आंगीं। विरंचीही नाहीं ॥२२॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्गमेदम्।

व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४९॥

म्हणोनि विश्वरूपलाभें श्लाघा। एथिंचें भय नेघ नेघ। हें वांचूनि चांग। न मनीं कांहीं ॥२३॥ हां
गा समुद्र अमृताचा भरला। आणि अवसांत वरपडा जाहला। मग कोणीही आथि वोसंडिला। बुडिजेल
म्हणोनि ॥२४॥ नातरी सोनयाचा डोंगर। येसणा न चले हा थोर। ऐसें म्हणोनि अव्हेर। करणें घडे
॥२५॥ दैवें चिंतामणि लेईजे। कीं हें ओझें म्हणोनि सांडिजे। कामधेनु दवडिजे। न पोसे म्हणोनि
॥२६॥ चंद्रमा आलिया घरा। म्हणिजे निगें करितोसि उबारा। पडिसायि पाडितोसि दिनकरा। परता
सर ॥२७॥ तैसें ऐश्वर्य हें महातेज। आजि हातां आलें आहे सहज। कीं एथ तुज गजबज। होआवी
कां ॥२८॥ परि नेसणीच गांवढिया। काय कोपों आतां धनंजया। आंग सांडोनि छाया। आलिंगितोसि
मा ॥२९॥ हें नव्हे जो मी साचें। एथ मन करुनियां काचें। प्रेम धरिसी अवगणियेचें। चतुर्भुज जें
॥३०॥ तरि आझुनिवरी पार्था। सांडीं सांडीं हे व्यवस्था। इयेविषयीं आस्था। करिसी झणें ॥३१॥
हें रूप जरी घोर। विकृति आणि थोर। तरी कृतनिश्चयाचें घर। हेंचि करीं ॥३२॥ कृपण चित्तवृत्ति
जैसी। रोंवोनि घाली ठेवयापासीं। मग नुसधेनि देहेंसीं। आपण असे ॥३३॥ कां अजातपक्षिया

जवळा। जीव बैसवूनि आर्विसाळां। पक्षिणी अंतराळा। माजीं जाय ॥३४॥ नाना गाय चरे डोंगरीं।
परि चित्त बांधिलें वत्सें घरीं। तैसें प्रेम एथिंचें करी। स्थानपती ॥३५॥ येरें वरिचिलेनि चित्तें। बाह्या
सखयासुखापुरतें। भोगिजो कां श्रीमूर्तीतें। चतुर्भुज ॥३६॥ परि पुढतपुढती पांडवा। हा एक बोलु न
विसरावा। जे इये स्वरूपौनि सद्भावा। नेदावें निघों ॥३७॥ हें कहीं नव्हतें देखिलें। म्हणोनि भय जें
तुज उपजलें। तें सांडीं एथ संचलें। असों दे प्रेम ॥३८॥ आतां करुं तुजयासारिखें। म्हणितलें
विश्वतोमुखें। तरि मागील रूप सुखें। न्याहाळीं पां तूं ॥३९॥

संजय उवाच : इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।

आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

ऐसें वाक्य जी बोलतखेंवो। मागुता मनुष्य जाहला देवो। हें ना परि नवलावो। आवडीचा तिये
॥६४०॥ श्रीकृष्णचि कैवल्य उघडें। वरि सर्वस्व विश्वरूपायेवडें। हातीं दिधलें कीं नावडे। अर्जुनासी
॥४९॥ वस्तु घेऊनि वाळिजे। जैसें रत्नासि दूषण ठेविजे। नातरी कन्या पाहूनियां म्हणिजे। मना नये
हे ॥४२॥ तया विश्वरूपायेवडी दशा। करितां प्रीतीचा वाढु कैसा। शेल दिधलीसे उपदेशा। किरीटीसि
देवें ॥४३॥ मोडोनि भांगाराचा रवा। लेणें घडिलें आपलिया सवा। मग नावडे जरी जीवा। तरी
आटिजे पुढती ॥४४॥ तैसें शिष्याचिये प्रीती जाहलें। कृष्णत्व होतें तें विश्वरूप केलें। तें मना नयेचि
मग आणिलें। कृष्णपण मागुतें ॥४५॥ हा ठाववरी शिष्याची निसी। सहाते गुरु आहाती कवणे

* देशीं।परी नेणिजे आवडी कैशी। संजयो म्हणे ॥४६॥ मग विश्वरूप व्यापूनि भोंवतें। जें दिव्य *
 * योगतेज प्रगटलें होतें। तेंचि सामावलें मागुतें। कृष्णरूपीं तिये ॥४७॥ जैसें त्वंपद हें आघवें। *
 * तत्पदार्थी सामावे। अथवा द्रुमाकारु सांठवे। बीजकणिके जेवीं ॥४८॥ नातरी स्वप्नसंभ्रमु जैसा। *
 * गिळी चेइली जीवदशा। श्रीकृष्णें योगु तैसा। संहारिला तो ॥४९॥ जैसी प्रभा हारति बिंबीं। की *
 * जळदसंपत्ती नर्भीं। भरतें सिंधुगर्भीं। रिगालें राया ॥५०॥ हो कां जे कृष्णाकृतीचिये मोडी। होती *
 * विश्वरूपपटाची घडी। ते अर्जुनाचिये आवडी। उकलूनी दाविली ॥५१॥ तव परिमाणा रंगु। तेणें *
 * देखिला साविया चांगु। तेथ ग्राहकीये नव्हेचि लागु। म्हणोनि घडी केली पुढती ॥५२॥ तैसें वाढीचेनि *
 * बहुवसपणें। रूपें विश्व जितिलें जेणें। तें सौम्य कोडिसवाणें। साकार जाहलें ॥५३॥ किंबहुना अनंतें। *
 * धरिलें धाकुटपण मागुतें। परि आश्वासिलें पार्थातें। बिहालियासी ॥५४॥ तेथ जो स्वप्नीं स्वर्गा गेला। *
 * तो अवसांत जैसा चेइला। तैसा विस्मयो जाहला। किरीटीसी ॥५५॥ नातरी गुरुकृपेसवें। वोसरलेया *
 * प्रपंचज्ञान आघवें। स्फुरे तत्त्व तेंवी पांडवें। मूर्ति देखिली ॥५६॥ तया पांडवा ऐसें चितीं। आड *
 * विश्वरूपाची जवनिका होती।ते फिटोनि गेली परौती। हें भलें जाहलें ॥५७॥ काय काळातें जिणोनि *
 * आला। कीं महावातु मागां सांडिला। आपुलिया बाहीं उतरला। सात सिंधु ॥५८॥ ऐसा संतोषु बहु *
 * चित्तें। घेइजत असे पांडुसुतें। विश्वरूपापाठीं कृष्णातें। देखोनियां ॥५९॥ मग सूर्याचां अस्तमानीं। *

* मागुती तारा उगवती गगनीं। तैसी देखों लागला अवनी। लोकांसहित ॥६०॥ पाहे तंव तें कुरुक्षेत्रा *
 * तैसेंचि दोहीं भागीं झाले गोत्रा वीर वर्षताति शस्त्रास्त्रा संघाटवारी ॥६१॥ तया बाणांचिया मांडपाआंतु। *
 * तैसाचि रथु आहे निवांतु। धुरे बैसला लक्ष्मीकांतु। आपण तळीं ॥६२॥ *

* **अर्जुन उवाच :** दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन। इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥ *

* एवं मागील जैसें तैसें। तेणें देखिलें वीर्यविलासें। मग म्हणे जियालों ऐसें। जाहलें आतां ॥६३॥ *
 * बुद्धीतें सांडोनि ज्ञाना। भेणें वळघलें राना। अहंकारेंसीं मना। देशधडी जाहलें ॥६४॥ इंद्रियें प्रवृत्ती *
 * भुललीं। वाचा प्राणा चुकली। ऐसी आपांपरी होती जाली। शरीरग्रामीं ॥६५॥ तियें आघवींचि *
 * मागुतीं। जिवंत भेटलीं प्रकृती। आतां जिताणें श्रीमूर्ती। जाहलें यियां ॥६६॥ ऐसें सुख जीवीं घेतलें। *
 * मग कृष्णातें जी म्हणितलें। मियां तुमचें रूप देखिलें। मानुष हें ॥६७॥ हें रूप दाखवणें देवराया। कीं *
 * मज अपत्या चुकलिया। बुझावोनि तुवां माया। स्तनपान दिधलें ॥६८॥ जी विश्वरूपाचां सागरीं। *
 * होतों तरंग मवित वांवेवरी। तो इये निजमूर्तीचां तीरीं। निगालों आतां ॥६९॥ आइकें द्वारकापुरसुहाडा। *
 * मज सुकतिया जी झाडा। हे भेटी नव्हे बहुडा। मेघाचा केला ॥६७०॥ सावियाचि तृषा फुटला। तया *
 * मज अमृतसिंधु हा भेटला। आतां जिणयाचा फिटला। अभरंवसा ॥७१॥ माझां हृदयरंगणीं। होताहे *
 * हरिखलतांची लावणी। सुखेंसीं बुझावणी। जाहली मज ॥७२॥ *

* **श्रीभगवानुवाच :** सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्ममादेवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥५२॥ *

यया पार्थाचियी बोलासवें। हें काय गा म्हणितलें देवें। तुवां प्रेम ठेवूनि यावें। विश्वरूपीं की ॥७३॥ मग इये श्रीमूर्ती। भेटावें सडिया आयती। ते शिकवण सुभद्रापती। विसरलासि ॥७४॥ अगा आंधळिया अर्जुना। हाता आलिया मेरुही होय साना। ऐसा आथी मना। चुकीचा भावो ॥७५॥ तरि विश्वात्मक रूपडें। जें दाविलें आम्हीं तुजपुढें। तें शंभूही परि न जोडे। तपें करितां ॥७६॥ आणि अष्टांगादिसंकटीं। योगी शिणताति किरीटी। परि अवसरु नाहीं भेटी। जयाचिये ॥७७॥ तें विश्वरूप एकादे वेळ। कें देखों अळुमाळ। ऐसें स्मरतां काळ। जातसे देवां ॥७८॥ आशेचिया अंजुळी। ठेऊनि हृदयाचां निडळीं। चातक निराळीं। लागले जैसे ॥७९॥ तैसे उत्कंठानिर्भरा। होऊनियां सुरनरा। घोकीत आठही पाहारा। भेटी जयाची ॥८०॥ परि विश्वरूपासारिखें। स्वप्नींही कोणही न देखे। तें प्रत्यक्ष तुवां सुखें। देखिलें हें ॥८१॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥

पें उपायासि वाटा। न वाहती एथ सुभटा। साहीसहित वोहटा। वाहिला वेदीं ॥८२॥ मज विश्वरूपाचिया मोहरा। चालावया धनुर्धरा। तपांचियाही सर्वभारा। नव्हेचि लागु ॥८३॥ आणि दाना कीर कानडें। मी यज्ञींही तैसा न सांपडें। जैसेनि कां सुरवाडें। देखिला तुवां ॥८४॥ तैसा मी एकीचि परी। आतुडें गा अवधारीं। जरी भक्ति येऊनि वरी। चित्तातें गा ॥८५॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥५४॥

परि तेचि भक्ति ऐसी। पर्जन्याची सुटिका जैसी। धरावांचूनि अनारिसी। गतिचि नेणे ॥८६॥ कां सकळ जळसंपत्ती। घेऊनि समुद्रातें गिंवसिती। गंगा जैसी अनन्यगती। मिळालीचि मिळे ॥८७॥ तैसें सर्वभावसंभारें। न धरत प्रेम एकसरें। मजमाजीं संचरे। मीचि होऊनि ॥८८॥ आणि तेवींचि मी ऐसा। थडिये माझारीं सरिसा। क्षीराब्धि कां जैसा। क्षीराचाचि ॥८९॥ तैसें मजलागुनी मुंगीवरी। किंबहुना चराचरीं। भजनासि कां दुसरी। भ्रांति नाहीं ॥९०॥ तयाचि क्षणासवें। एवंविध मी जाणवें। जाणितला तरी स्वभावे। दृष्ट होय ॥९१॥ मग इंधनीं आग्नि उद्दीपे। आणि इंधन हे भाष हारपे। तें आग्निचि होऊनि आरोपे। मूर्त जेवीं ॥९२॥ कां उदय न कीजे तेजाकारें। तंव गगनचि होऊनि असे आंधारें। मग उदैलियां एकसरें। प्रकाशु होय ॥९३॥ तैसें माझां साक्षात्कारीं। सरे अहंकाराची वारी। अहंकारलोपीं अवधारीं। द्वैत जाय ॥९४॥ मग मी तो हें आघवें। एक मीचि आथी स्वभावे। किंबहुना सामावें। समरसें तो ॥९५॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः। निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥

जो मजचि एकालागीं। कर्म वाहातसे आंगीं। जया मीवांचोनि जगीं। गोमटें नाहीं ॥९६॥ दृष्टादृष्ट सकळ। जयाचें मीचि केवळ। जेणें जिणयाचें फळ। मजचि नाम ठेविलें ॥९७॥ भूतें हें भाष विसरला। जे दिठी मीचि आहे बांधला। म्हणोनि निर्वैर जाहला। सर्वत्र भजे ॥९८॥ ऐसा जो भक्तु होये। तयाचें त्रिधातुक हें जें जाये। तें मीचि होऊनि ठाये। पांडवा गा ॥९९॥ ऐसें जगदुदरदोंदिलें। तेणें करुणारसरसाळें। संजयो म्हणे बोलिलें। श्रीकृष्णदेवें ॥१००॥ ययावरी तो पांडुकुमरा। जाहला आनंदसंपदा थोरु। आणि कृष्णचरणचतुरा। एक तो जगीं ॥१०१॥ तेणें देवाचिया दोनही मूर्ती। निकिया न्याहाळिलिया चित्तीं। तंव विश्वरूपाहूनि कृष्णाकृती। देखिला लाभु ॥१०२॥ परि तयाचिये जाणिवे। मानु न कीजेचि देवें। जे व्यापकाहूनि नव्हे। एकदेशी ॥१०३॥ हेंचि समर्थावयालागीं। एक दोन चांगी।



